RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 58 अंक : 06 प्रकाशन तिथि : 25 मई कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 जून 2021

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

परमवीर मेजर शैतान सिंह

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान
फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़
आजाद सिंह राठौड़
सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी – स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड
हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 जून, 2021

वर्ष : 57 अंक : 06

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय - सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	06
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	07
☞ परमवीर मेजर शैतानसिंह	✍ ब्रिगेडियर मोहनलाल (से.नि.)	10
☞ मेरी साधना	✍ श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली	12
☞ पानरवा के सोलंकी शासक	✍ संकलित	17
☞ विज्ञान के सिद्धान्त व संघ कार्य	✍ श्री रणजीतसिंह आलासण	19
☞ छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को	✍ स्वामी श्री जगदात्मानन्द	20
☞ यमराज का मेहमान : नचिकेता	✍ संकलित	25
☞ तप का सार क्या है?	✍ महात्मा श्री चैतन्य मुनि	30
☞ विचार-सरिता (द्विषष्टिः लहरी)	✍ विचारक	31
☞ मन की चिन्ता	✍ रश्मि रामदेरिया	32
☞ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

रामनवमी :

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम का जन्म दिवस 21 अप्रेल को मनाया गया। कोराना महामारी के कारण सामुहिक कार्यक्रम नहीं किए जा सकते अत: सभी जगह गूगल मीट पर वर्चुअल माध्यम से मनाए गये। संघ के विभिन्न संभागों ने अलग-अलग वर्चुअल कार्यक्रम किए। बाड़मेर संभाग के कार्यक्रम को माननीय संघप्रमुखश्री ने सम्बोधित किया। भगवान राम के जीवन आदर्शों को संघ के माध्यम से अपने जीवन में उतारने का अभ्यास निरंतर चलता रहे। यह वह अनुष्ठान है जिसमें निरन्तरता तथा नियमितता की आवश्यकता है। इसमें यदि अवरोध आया तो वह हमारे जीवन को व्यर्थ गंवा देने वाला बन जाएगा। भगवान यही चाहते हैं कि हम उनका अनुकरण करें। मनुष्य ऐसा करता है उसकी कभी दुर्गति नहीं होती। श्रेष्ठ आचरण करने वाले क्षत्रियों ने कालांतर में जब उस आचरण का पालन नहीं किया तो यह संसार के पतन का कारण बन गया। संसार की इस विकृति को दूर करने के लिये ही पू. तनसिंहजी ने श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना की। संघ के माध्यम से क्षत्रियोचित संस्कारों का निर्माण किया जा रहा है, ये संस्कार इस संसार की पूंजी हैं।

वर्चुअल कार्यक्रम के माध्यम से ही गुजरात के गोहिलवाड़ संभाग के कार्यक्रम को वरिष्ठ स्वयंसेवक श्री अजीतसिंहजी धोलेरा ने संबोधित किया। मध्य गुजरात संभाग को श्री दीवानसिंह कानेटी, उत्तर गुजरात संभाग में श्री विक्रमसिंह कमाना ने सम्बोधित किया।

जैसलमेर संभाग के वर्चुअल कार्यक्रम को संचालन प्रमुख श्री लक्ष्मणसिंह, जयपुर संभाग के कार्यक्रम को श्री प्रेमसिंह रणधा, पोकरण संभाग को श्री गजेन्द्रसिंह आऊ, जोधपुर संभाग को श्री प्रेमसिंह, जालोर संभाग को श्री रेवंतसिंह पाटोदा, नागौर संभाग को श्री रेंवतसिंह पाटोदा, बीकानेर संभाग को राजेन्द्रसिंह आलसर और महाराष्ट्र संभाग को श्री नीरसिंह सिंघाना ने सम्बोधित किया। मेवाड़-वागड़-मालवा संभाग के बन्धु बाड़मेर संभाग के कार्यक्रम में सम्मिलित हुए।

सभी कार्यक्रमों में भगवान राम के आदर्श जीवन चरित्र, श्री क्षत्रिय युवक संघ तथा संघ की हीरक जयन्ती सम्बन्धी बात रखी गई।

सम्राट विक्रमादित्य :

सम्राट वीर विक्रमादित्य की स्मृति में विक्रम संवत के प्रथम दिन विक्रमोत्सव मनाया गया। परमार नरेश विक्रमादित्य ही ने विक्रम संवत प्रारम्भ किया। वे न्यायप्रिय, प्रजावत्सल व संपूर्ण भारत को एक सूत्र में पिरोने वाले सम्राट थे। हम हमारे ऐसे ऐतिहासिक रत्नों के सम्बन्ध में कार्यक्रम रखकर उत्सव नहीं मनाते हैं तभी अन्य लोग उनको अपना पूर्वज बता कर इतिहास को विकृत करने में लगे हुए हैं। अत: हमें हमारे ऐतिहासिक महापुरुषों की जयन्तियाँ मनाकर उन्हें स्मृति में बनाए रखना है और उनके अनुकरणीय चरित्र से शिक्षा लेनी है। संघ के संचालन प्रमुख श्री लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास ने इस अवसर पर वर्चुअल कार्यक्रम को सम्बोधित किया। देश भर से बन्धुगण जुड़े।

कोरोना सम्बन्धी निर्देशों का पालन करते हुए भौतिक रूप से भी कार्यक्रम किए गये। जालोर जिले के रामसीन गाँव में रखे गए कार्यक्रम को रेवन्तसिंह पाटोदा ने सम्बोधित किया। स्थानीय बन्धुओं ने भी सम्बोधित किया। बाड़मेर शहर के जय भवानी छात्रावास व गाँधीनगर में, चोहटन स्थित भवानी क्षत्रिय बोर्डिंग में, गुड़ामालानी के गाँव बूठ में, शिव के भिंयाड़ गाँव स्थित मातेश्वरी शाखा में भी कार्यक्रम आयोजित हुए जिनमें संघ की हीरक जयन्ती की भी चर्चा हुई।

सम्पर्क यात्रा, स्नेह मिलन :

जयपुर स्थित कनकपुरा में 11 अप्रेल को एक स्नेह मिलन कार्यक्रम का आयोजन हुआ जिसमें स्थानीय बन्धु सम्मिलित हुए। इसमें श्री क्षत्रिय युवक संघ और उसकी

हीरक जयन्ती सम्बन्धी चर्चा हुई। 11 अप्रेल को ही ओसियाँ (जोधपुर) में प्रांतीय स्नेह मिलन का आयोजन राजपूत छात्रावास में हुआ। 29 मार्च को मध्य गुजरात संभाग की मासिक बैठक कानेटी में सम्पन्न हुई।

गुजरात में बनासकांठा की थराद तहसील के भोरडू, उदराणा, राह, डुवा व उटवेलिया गाँवों में सम्पर्क यात्रा कर संघ व हीरक जयन्ती की चर्चा की गई। दांतीवाड़ा तहसील के पांथावाड़ा, आरखी तथा धनियावाड़ा गाँवों में 4 अप्रेल को सम्पर्क यात्रा की गई। दांतीवाड़ा तहसील के ही गुंदरी, सातसण और आकोली गाँवों में 7 अप्रेल को सम्पर्क किया गया और संघ चर्चा की गई।

19 अप्रेल को एक वर्चुअल बैठक के माध्यम से संचालन प्रमुख ने केन्द्रीय कार्यकारी, संभाग प्रमुख, केन्द्रीय सहयोगी और प्रान्तप्रमुखों को सम्बोधित किया और सक्रियता बनाए रखते हुए अपना दायित्व निभाने में तत्परता बरतने को कहा। इस बैठक में वर्चुअल रूप से 75 से अधिक बन्धु सम्मिलित हुए।

संघ तीर्थ दर्शन :

जहाँ श्री क्षत्रिय युवक संघ के शिविर पूर्व में हो चुके हैं, वे सभी स्थल हमारे लिए तीर्थ हैं, जहाँ हमने साधना की। ऐसे स्थल पर जाकर प्रेरणा भी लें और स्थानीय समाज बन्धुओं से संघ की तथा संघ के हीरक जयन्ती वर्ष की बात भी करें, इसके लिए संघ तीर्थ दर्शन कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं।

गुजरात की साणंद तहसील के गाँवों हेतु 22 से 28 मार्च तक कार्यक्रम चलता रहा। 22 मार्च को रैथल, 23 मार्च को मोडासर, 24 मार्च को वासणा, 25 मार्च को खोडा, 26 मार्च को गरोडिया, 27 मार्च को गोधावी तथा 28 मार्च को चेखला में लगातार संघतीर्थ दर्शन कार्यक्रम चले। 25 मार्च को भाल प्रान्त के गाँव बावलियारी में तथा 4 अप्रेल को वीरमगाँव तहसील के वांसवा में कार्यक्रम रहे।

राजस्थान में 31 मार्च को बूठ जैतमालोत (बाड़मेर) में 2 अप्रेल को गेहूँ गाँव (बाड़मेर शहर प्रान्त), बाड़मेर के ही कानोड़ गाँव में 4 अप्रेल को, 4 अप्रेल को ही (पाली) में सोजत मंडल के बीजागुड़ा गाँव में, 4 अप्रेल को ही सुजानगढ़ के बैनाथा गाँव में, 4 अप्रेल को ही जैसलमेर के आसरीमठ प्रांगण में, 7 अप्रेल को नीम्बी जोधा (नागौर) में, 8 अप्रेल को सिंघाणा (डीडवाना) में, 11 अप्रेल को दूजोद (सीकर) में, 11 अप्रेल को ही गुड़ामालानी के राणासर में, 11 अप्रेल को ही चोहटन के गोहड़कातला में तथा 11 अप्रेल को ही नीम्बोड़ा फांटा (नागौर) में संघतीर्थ दर्शन के कार्यक्रम आयोजित हुए।

श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन :

श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन ने 2 अप्रेल को बीकानेर जिले के जन प्रतिनिधियों का तथा 4 अप्रेल को जालोर जिले के जन प्रतिनिधियों का मिलन समारोह रखा। परस्पर मिलकर कार्य करें तथा अपने पद की गरिमा बनाए रखकर समाज की प्रतिष्ठा बनाएँ, इस सम्बन्ध में चर्चा की गई। सामाजिक एकता की ओर बढाया गया कदम साबित होंगे ऐसे कार्यक्रम, ऐसे समाज बन्धुओं ने विचार रखे।

3 अप्रेल को चोहटन में तथा 4 अप्रेल को रामसर में श्री क्षात्रपुरुषार्थ फाउण्डेशन के कार्य विस्तार विषय पर चर्चा हुई। कार्य विस्तार योजना के सम्बन्ध में ही 10 अप्रेल को गुड़ामालानी में बैठक आयोजित की गई। 10 अप्रेल को चित्तौड़ जिले की बैठक आयोजित की गई तथा 11 अप्रेल को केकड़ी में बैठक सम्पन्न हुई। 11 अप्रेल को ही सिणधरी तथा सिवाना में भी बैठकें हुई।

11 अप्रेल को चिकित्सा क्षेत्र से जुड़े समाज के लोगों की एक बैठक संघशक्ति कार्यालय जयपुर में आयोजित की गई। कोरोना सम्बन्धित निर्देशों के कारण कम लोगों को बुलाया गया पर उपस्थित चिकित्सकों व चिकित्सा कर्मियों में इस मिलन के प्रति बड़ा उत्साह था तथा भविष्य में ऐसे बड़े समारोह की इच्छा सभी ने प्रकट की।

हमारे इतिहास को विकृत करने और हमारे महापुरुषों को अन्य जातियों का स्थापित करने के कुत्सित प्रयासों के विरुद्ध भी प्रताप फाउण्डेशन व क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन लगातार उचित दिशा में कार्यवाही कर रहे हैं।

चलता रहे मेरा संघ

{विशेष मिलन शिविर माणकलाव में दिनांक 14.6.2004 को संघप्रमुख माननीय श्री भगवानसिंह जी द्वारा उद्‌बोधित प्रभात संदेश का संक्षेप।}

अभी जो हमने प्रार्थना की, उसकी एक पंक्ति थी- 'तुमने दिया तव चरणों में है न्योछावर, स्वीकार करो।' यह अहोभाव है कि जो कुछ मेरे पास है, वह सब तुमने ही तो दिया है, अत: वह सब तुम्हारे चरणों में ही समर्पित है। इस अहोभाव के बिना ईश्वर के सन्मुख भी नहीं हुआ जाता। इस अहोभाव के बिना तो संसार के सम्मुख भी नहीं हुआ जाता। संसार से जो पाया, वह संसार का ही है। हम उस पर हमारी लिप्तता क्यों रखें। इस अहोभाव के बिना तो श्री क्षत्रिय युवक संघ के सम्मुख भी नहीं हुआ जा सकता।

जिसमें यह अहोभाव जागृत हो जाए तो समझ लो जीवन में चेतना आ गई है। भजन जागृत हो गया है। पुण्य जागृत हो गए हैं। ऐसा हो जाए तो यात्रा प्रारम्भ हो जाती है, ऐसी यात्रा जो कभी न रुके। शर्त है अहोभाव बना रहे। यह अहोभाव जागृत हो जाए तो आप कर्मठ कर्मयोगी हों, ज्ञानी हों अथवा भक्त हों, कोई अन्तर नहीं पड़ता।

अहोभाव को साथ लेकर चलने से जीवन में निर्भयता, निरहंकारिता आदि सब आ जाते हैं। अहंता, ममता आदि बन्धन हमें छू भी नहीं सकेंगे। कोई दुश्मन हम पर आक्रमण नहीं कर सकेगा। न भीतर से न बाहर से।

बात बहुत सरल है-अभाव का भाव। मैं कुछ भी नहीं। मैं कुछ होने का भाव हो तो रुकावट आ जाएगी। शिविर में भी इसी अहोभाव की आवश्यकता है। कार्यालय में भी अधिकारी के भाव से नहीं, अहोभाव के साथ रहें। संसार में भी ऐसे ही रहें। यह कल्याण का मार्ग है। जहाँ यह भाव दूर हुआ तो खतरा है। अधिकारी बन कर भी यही भाव रख लेते हैं तो ठीक राह पर हैं।

ज्ञानवान बन गये हैं, धनवान बन गए हैं, यह हमारी विशेषता नहीं, परमेश्वर की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ है। कभी ऐसा लगे कि यह मेरा है तो 'ददाति प्रति गृहणाति' दे डालें प्रभु के चरणों में और माँग लें जीवन निर्वाह के लिए। परमेश्वर ने जीवन निर्वाह के लिए ही दिया है। परमेश्वर की कृपा से प्राप्त उसी को सौंप दें और अपने लिए माँग लें। अहोभाव दृढ़तर बनता जाएगा।

हम श्री क्षत्रिय युवक संघ के जर खरीद गुलाम हैं ऐसा भाव बनाए रखें। हमने हमारा सर्वस्व ही नहीं दिया, अपने आपको भी संध को दे दिया। कुछ भी छुपा कर नहीं रखा। यह अनुभूति हो और जीवन निर्वाह के लिये माँ से, समाज से माँग लें। इससे अधिक और क्या किया जा सकता है। हम साक्षात् गवाह हैं, इस बात के। घटप्रमुख आदि सब साधन हैं। मन, बुद्धि, भौतिक साधन भी साधन हैं। तुमने (संघ ने) दिया और तुम्हारे ही हैं। मैं इनको पकडूं नहीं, अपनी उपलब्धि न मानूँ।

हम कितने भाग्यशाली हैं कि हमें ऐसा बोध कराया गया। परमेश्वर के प्रति हमारा यह अहोभाव बना रहे कि उसी ने क्षत्रिय युवक संध में हमें भेजा और बोध कराया। आप सब क्षत्रिय युवक संघ के ही हैं-चाहे शिविरों में आएँ न आएँ। आपका अहोभाव बना रहे तो यह सुरक्षा-चक्र है। यह अहोभाव तिरोहित न हो जाए यही जागृति रखनी है।

परमेश्वर के प्रति इस अहोभाव से ओत-प्रोत हो जाएँ। तू मेरा, मैं तेरा, मैं तेरा अंश हूँ। तुम मेरे अंश नहीं हो। हम संघ के हैं-संघ मेरा है-यह कार्य मेरा है। इस कार्य को तत्काल मनोयोग से पूरा करूंगा। कर्तव्य ही मेरा अधिकार है व अधिकार ही मेरा कर्तव्य है। यह भाव हो तो तत्काल मनोयोग से पूरा करने में ही स्वयंसेवक लगेगा। काम मेरा है, इस भाव के बिछुड़ने से परमेश्वर भी बिछुड़ जाता है। इसे हर क्षण याद रखें। संघ में, घर में, संसार में इस अहोभाव को बनाए रखें। सभी में अहोभाव जागृत हो और जागृत बना रहे, यही आज के प्रभात की मंगल कामना है।

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपनी आत्म-कथा का वर्णन जिस पुस्तक में किया, उसका शीर्षक रखा-''एक भिखारी की आत्म कथा''। भिखारी शब्द सुनते ही हमारे सामने उस भिखारी का चित्र उभर आता है, जो शहरों में, नगरों में, गाँवों में, गली-खाँचों में भिक्षा पात्र लिये भीख माँगता नजर आता है। जो दाने-दाने के लिए तरसता रहता है और अपने पेट की भूख मिटाने के लिए जन-जन के सामने हाथ पसार कर रोटी की भीख माँगता है, अपने तन को ढकने के लिए पैसों की व दया की भीख माँगता है।

पूज्य श्री तनसिंहजी की आत्मकथा में ''भिखारी'' शब्द आया है, उसका अभिप्राय उस भिखारी से नहीं है जो लोगों के सामने हाथ पसार कर भीख माँगता है-दे-दो, बाबू दे-दो, भगवान तेरा भला करेगा; यहाँ भिखारी का अभिप्राय उस भिखारी से नहीं है जो खाने व तन ढकने के लिये पैसों की भीख माँगता है, यहाँ भिखारी का अभिप्राय उस भिखारी से नहीं है जो सदैव भौतिक पदार्थो की भीख माँगता रहता है, यहाँ भिखारी का अभिप्राय उस भिखारी से नहीं है जो दयनीय और आत्मबल से दिवालिया बन कर दया की भीख माँगता है; यहाँ भिखारी का अभिप्राय उस भिखारी से नहीं है जो दीन-हीन स्थिति में भिक्षा पात्र लिये जन-जन के सामने दया की भीख माँगता रहता है और जिसका रैन-बसेरा-सोना, उठना-बैठना फुटपाथ व गली-खाँचों में होता है।

यहाँ भिखारी से अभिप्राय पूर्व में शासक रही राजपूत जाति और इस जाति के लोगों से है, जिन्हें तत्कालीन सरकार अपने रास्ते का रोड़ा व कांटा मान इन्हें अपने रास्ते से हटाने के लिए एक साजिश के तहत इनकी आजीविका को छीनकर इन्हें भिखारी के कगार पर ला खड़ा कर दिया अर्थात् इस कौम को अर्थहीन व साधनहीन बना डाला।

स्वतंत्र भारत में राजपूत जाति का जितना उत्पीड़न हुआ, उनके साथ जितना जघन्य अपराध व घोर अन्याय हुआ, उतना शायद ही किसी देश में किसी जाति या वर्ग के साथ हुआ हो। पूर्व में शासक रही राजूपत कौम को तत्कालीन सरकार अपने लिए खतरा मान रही थी, सबसे बड़ा अपना दुश्मन समझ रही थी। इस कौम को अपने रास्ते का रोड़ा व कांटा मान इन्हें अपने रास्ते से हटाने के लिए, इन्हें तोड़ने, इन्हें विफल करने की साजिश रची जाने लगी। इस साजिश में बलि का बकरा बना साधारण राजपूत वर्ग।

साधारण राजपूत परिवार जिनके आजीविका का साधन उनकी वह कुछ बीघा पुश्तैनी भूमि थी, जिस पर मेहनत, मजदूरी करके अपने परिवार का भरण-पोषण करता था। यही उनकी व्यक्तिगत पैतृत सम्पत्ति थी। राजपूत समाज को आर्थिक दृष्टि से कमजोर करने के लिये, संविधान में जो सम्पत्ति का मौलिक अधिकार था जिसे तत्कालीन सरकार ने समाप्त कर उनकी मालिकाना हक व स्वामित्व की व्यक्तिगत सम्पत्ति उनकी पुश्तैनी भूमि से उनका मालिकाना हक व स्वामित्व का अधिकार उनसे छीनकर उनकी कुछ बीघा भूमि उनसे हड़प ली।

घर में विधवा औरत, बच्चे छोटे- वह उस भूमि को जोत नहीं सकती। घर में कमाने वाला बीमार है, अपाहिज है, बाल-बच्चे छोटे हैं और कोई बड़ा जमीन जोतने वाला घर में नहीं है, वे अपनी इस जमीन को जोत तो नहीं सकते पर अपनी इस जमीन के सहारे से ही अपने परिवार का पालन-पोषण करते थे और वह जमीन ही

उनकी आजीविका का आधार थी। ऐसे लोगों की जमीन हड़पने के लिए सरकार ने नारा दिया कि ''जो जोते जमीन उसी की'' और उनकी भूमि किसी ओर को देकर उन्हें तो भूस्वामी बना डाला, पर उन असहाय व्यक्तियों की वह भूमि ही उनकी आजीविका थी, उनसे छीनकर उन्हें भूमिहीन बनाकर बेसहारा कर दिया।

एक राजपूत के पास दस बीघा, पच्चीस बीघा, सौ बीघा जो भी भूमि थी, वह उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति थी। दूसरी ओर एक पूंजीपति जिसके पास मिल, कारखाना, शोरूम उस पूंजीपति की व्यक्तिगत सम्पत्ति थी। सरकार ने नारा दिया-''जमीन किसकी? जो जोते उसकी'' और उनकी वह व्यक्तिगत सम्पत्ति उनसे छीनकर उन्हें भूमिहीन बना बेसहारा कर दिया। पूंजीपतियों के लिए भी यह नारा देना था कि ''मिलें, कारखाने किसके? जो चलाये उसके'', पर सरकार ने उनके लिये यह नारा नहीं दिया, इसलिए मिलें, कारखाने चलाने वाले मजदूरों को क्या मिला? कुछ भी नहीं मिला। मिल, कारखाना का मालिक तो पूंजीपति ही बना रहा। सरकार ने यहाँ भेद-भाव किया। इससे साफ जाहिर होता है कि सरकार ने राजपूतों के साथ जो कुछ भी किया, उनके पीछे बदले की भावना व उनकी बदनीयति थी, उसी की वजह से उसने ऐसा कदम उठाया।

जब राजपूतों की व्यक्तिगत सम्पत्ति कुछ बीघा जमीन सरकार हड़पने जा रही थी, तो राजपूतों ने इसका विरोध किया। इसके विरोध में आम राजपूत सड़कों पर उतर आये। पुलिस की लाठियाँ और लातें खा रहे थे, जेलों में बंद हो रहे थे, अपमानित हो दर-दर भटक रहे थे, तब तो पूंजीपति चुपचाप बैठे रहे मानो उनकी जुबान पर ताला जड़ा हो। उनसे उम्मीद थी कि वे इस मुसीबत में मदद करेंगे, उनके पास भी व्यक्तिगत सम्पत्ति उनकी मिल, कारखाना थी न, पर वे मदद को आगे नहीं आये। जब राजपूतों की आजीविका उनकी कुछ बीघा जमीन जो उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति थी, उनसे छिन चुकी तो पूंजीपतियों को भय सताने लगा कि कहीं अब हमारी बारी न जा आए, इसलिए उन्होंने नारा लगाया कि ''व्यक्गित सम्पत्ति की रक्षा होनी चाहिए।''

पूंजीपतियों का सत्ता पक्ष में दबदबा था। ये सत्तापक्ष को प्रभावित कर रहे थे, इसलिए इनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति मिल, कारखाना आदि को सत्ता पक्ष ने छुआ तक नहीं और इनकी ये व्यक्तिगत सम्पत्ति बच गयी। धनवानों का तबका हमेशा राजपूत वर्ग का शोषक रहा है। जरूरत पड़ने पर भी ये धनवान लोग राजपूतों के साथ मदद के लिए आगे नहीं आये और सत्ता पक्ष की तो राजपूत वर्ग पर पहले से ही बुरी नजर थी, इसलिए गाज सिर्फ राजपूत कौम पर ही पड़ी।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने पूंजीपतियों को सम्बोधित करते हुए कहा-

''तुम पूंजीपतियों ने वैयक्तिक स्वतंत्रता का नारा लगाकर अपनी स्वेच्छाचारिता पर कानून का मुलम्मा चढाने की कोशिश की और जीत तुम्हारे तबके की हुई क्योंकि आधुनिक राजनीति को प्रभावित करने वाले सभी साधनों की तुम्हारे पास प्रचुर मात्रा में भरमार थी। तुम धनवानों ने जनतंत्र का रोचक नारा लगाकर अपने शोषण को अमर्यादित कर दिया और उसकी पहली शिकार हुए हम राजपूत।

भारत वर्ष में आर्थिक क्रान्ति आ रही थी। यह आर्थिक क्रान्ति राजपूत समाज के लिए अभिशाप बन कर आयी। सबसे पहले उस क्रान्ति के शिकार बेचारे राजपूत ही हुए। उनका संचित और अर्जित सारा धन जिसे तुम व्यक्तिगत सम्पत्ति कहते हो, कानून की नोंक पर चढकर समाप्त होने लगा। राजपूतों ने हल्ला मचाना शुरू किया, वे जेलों में गये। राजस्थान की सारी जेलें भर गई, राजूपत हारे नहीं। तुम से सेठजी! बड़ी उम्मीद थी, क्योंकि तुम्हारे पास भी व्यक्तिगत सम्पत्ति थी, तुम तो बड़े होशियार निकले। कोरे और सूखे हमें टरका दिया। सेठः किसकी हिम्मत है, जो तुम्हारी सम्पत्ति को टेडी नजर से देखे।''

जिन परिस्थिति में और जिनके कारण राजपूत कौम की

आजीविका छीनी गयी, जिसकी वजह से इस कौम को आर्थिक दृष्टि से पंगु बनना पड़ा यानी यह कौम भिखारीत्व के कगार पर आ खड़ी हुई, इस सम्बन्ध में अपने समाज बन्धुओं को सम्बोधित करते हुए पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा–

''आज भी यह धनवानों का तबका व्यक्तिगत सम्पत्ति और स्वतंत्रता की बात करता है, पर भिखारी (बन्धु)! तुम्हारी व्यक्तिगत सम्पत्ति, जिसको लूट लिया गया है, का कोई नाम ही नहीं लेता। मिलों की रक्षा हो, सीलिंग न लगे, सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण न हो, यह नारे तो तुम्हारा शोषक लगाता है और भारत की सभी राजनैतिक पार्टियों (सिवाय साम्यवादी दल के) पर उसने अपना प्रभुत्व जमा रखा है। उसका शिकंजा ऐसा है, जिसमें तुम और हम फंसते भी जाते हैं और चिल्ला भी नहीं सकते। यह हैं, तुम्हारे भिखारी बनने के कारण।''

भिखारी शब्द सुनते ही घिन आती है और यदि हमें या हमारे समाज पर कोई भिखारी शब्द का कटाक्ष करे तो हमारे रोम-रोम में आग लग जाती है, हम जल-भुन जाते हैं, पर यह हकीकत है, इस हकीकत को स्वीकार करने का हम साहस नहीं कर पाते। हम इतिहास के पन्नों को पलट कर देखें-पहले जो हमारी स्थिति थी, उसकी तुलना हम आज जिस स्थिति में हैं, उससे तुलना करें तो सच्चाई हमारे सामने होगी। आज हमारे समाज की स्थिति भिखारी-सी ही है। हमारे पास जो कुछ था सब छिन चुका है। हमारी व्यक्तिगत सम्पत्ति द्वेष-ईर्ष्या की भेंट चढ गई। अब हमारे पास क्या रहा है, क्या बचा है? हमारे पास जो कुछ था, सब चला गया या छीन कर भिखारी बना दिया गया है अर्थात् हमें भिखारी की स्थिति में ला खड़ा कर दिया है। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपने समाज बन्धु को सम्बोधित करते हुए कहा–

''भिखारी का सम्बोधन सुनकर तुम्हारे रोम-रोम में आग लग गई। यह तुम्हारी पुरानी आदत है, पर मुझ पर क्यों नाराज हो। मैं तो खुद तुम्हारी ही भाँति भिखारी बना दिया गया हूँ। यदि तुम नाराज ही होना चाहते हो, तो उन पर हो, जिन्होंने तुम्हें भिखारी बना दिया है। कार्य और परिणाम पर कुढने की अपेक्षा अच्छा होता, कि तुम कारण के निवारण का यत्न करते, पर तुम्हारी एक गन्दी आदत बन गई है, पत्थर फेंकने वाले को न काटकर, पत्थर को काटने की भाँति दौड़ पड़ते हो। जरा विवेक से काम लो! तुम्हारी इस अवस्था के लिये मुझे भी इतना ही दुख है, जितना तुम्हें, पर मैं जीवन भर इस बात से लड़ रहा हूँ कि हमारे भिखारी होने के कारणों का निवारण किया जाए।''

(क्रमशः)

हमारी साधना का इतिहास इस बात का साक्षी है, कि जिस किसी ने चुटकी भरते सही मार्ग प्राप्त कर लिया, उन्हें बाद में उसी स्थान पर खड़े रहकर अपनी अप्रत्याशित सफलता पर मनन करना पड़ा। जिन्होंने ऐसा नहीं किया वे भटक गए। हर प्राप्ति को ठहर कर सुस्थिर करना आवश्यक है। जो लोग घनघोर परिश्रम के बाद राह पा सके, उनके असंतोष और कर्म-प्रेरणा ने ही उन्हें आगे बढाया है। लेकिन प्राप्ति के बाद सभी को प्रयत्न तो करना ही पड़ता है। विधि-विधान और यांत्रिकाएँ जब अपना पूरा फल दे देती हैं, फिर प्रेरणा का वह केन्द्र बदला ही जाना चाहिए, क्योंकि उसमें नवीन प्रेरणा की क्षमता नहीं रहती। जो प्रेरणा के नवीन केन्द्र का पता नहीं लगाते वे भूतकाल पर झींकते रहते हैं और दुनिया उनके पास से बिना उनकी ओर ध्यान दिए, आगे बढ जाती है।

– पू. तनसिंहजी

परमवीर मेजर शैतानसिंह

– ब्रिगेडियर मोहनलाल (से.नि.)

नैतिकता और मूल्यों के अवतार, वीरों के वीर, परमवीर मेजर शैतानसिंह को हम नमन करते हैं।

हम कैसे भूल सकते हैं उस वीरों के वीर, साहसी को जिसने चीन के साथ विश्व प्रसिद्ध रेजांग ला (लद्दाख) के युद्ध में असामान्य दृढ–निश्चय व कृत–संकल्प शक्ति से 18 नवम्बर, 1962 को अपने सैनिकों को अन्तिम साँस तक युद्ध के लिये प्रेरित किया।

नैतिकता तथा मूल्यों की अभेद्य नींव पर जीवन की अनश्वरता खड़ी है। मेजर शैतानसिंह (PVC) राष्ट्र भक्त सैनिक थे। नैतिक मूल्यों, आदर्शों, मनोबल, संघर्ष करने का उत्साह जैसे विचारों व भावनाओं को मूर्तरूप देने वाले होने के कारण उन्होंने राष्ट्र का गौरव बढाया। हम सब उनकी बहादुरी, नैतिक स्तर, बोधगम्य नैतिक मूल्यों से सदा प्रेरणा लेते रहेंगे।

18 नवम्बर, 1962 को मेजर शैतानसिंह ने 13 कुमाऊ की 'सी' कम्पनी को साथ लेकर चीन के खिलाफ जैसी शूरवीरता युक्त लड़ाई लड़ी, उसमें उन्होंने उच्चतम नैतिक मूल्यों को परिलक्षित किया।

मेजर शैतानसिंह चौपासनी स्कूल के बड़े सरल स्वभाव के, ईमानदार व कड़ा परिश्रम करने वाले छात्र थे। एक अच्छे फुटबाल खिलाड़ी होने के कारण वे जोधपुर के फुटबाल प्रेमियों–प्रशंसकों के नायक थे। उन्होंने कभी आपा नहीं खोया। ऐसे व्यक्तित्व वाले विद्यार्थी के नैतिक मूल्य, जो उन्होंने अपनी कम्पनी के साथ रेजांग ला के युद्ध में प्रदर्शित किए, उनका विश्लेषण करना उचित होगा। उस युद्ध के प्रमुख दृश्यों का विवरण निम्न प्रकार है –

रेजांग ला युद्ध :

लद्दाख में 17,000 फीट की ऊँचाई पर स्थित रेजांग ला कस्बा व चुसूल हवाई क्षेत्र की रक्षा का दायित्व 13 कुमाऊ की 'सी' कम्पनी को सौंपा गया था। यह विश्व का सबसे ऊँचा व सबसे ज्यादा ठण्डा क्षेत्र है। भौगोलिक विषमताओं के कारण यह कम्पनी बाकी बटालियन से अलग–थलग थी। चीनी सेना में सिकियांग पर्वत शृंखला क्षेत्र के ही सैनिक थे जो जमाव बिन्दु से नीचे तापमान व तेज हवाओं के क्षेत्र में प्रशिक्षित थे। 18 नवम्बर को उनकी कम्पनी पर भारी तोपों, गोलों व छोटे हथियारों से दुश्मन का भारी आक्रमण हुआ। उन्होंने अपने आप को बचाया व साथ ही दुश्मन को भारी क्षति पहुँचाते हुए उन्हें पीछे धकेला। लेकिन चीनी सेना ने लहरों की तरह बारम्बार और भी अधिक ताकत से आक्रमण किए। अपनी बाँह में गम्भीर घावों से आंशिक रूप से अक्षम होने के बावजूद उन्होंने एक प्लाटून से दूसरी प्लाटून तक जाकर घायलों की मदद की और उन्हें अन्तिम साँस तक लड़ते रहने के लिये प्रेरित किया। मशीन गन की गोलियाँ पेट में लगने से अब वे घातक रूप से घायल हो चुके थे परन्तु साथियों के पीछे के स्थान पर चले जाने के आग्रह को मना कर दिया और युद्ध करते हुए वहीं शहीद हो गए। प्रकृति माँ ने शहीद के पार्थिव शरीर को अपनी गोद में बर्फ के ढेर तले प्रतिष्ठापित किया, जिसे फरवरी 1963 में उत्खनन किया गया। इस प्रकार मेजर शैतानसिंह के असाधारण त्याग, साहस, प्रभावी नेतृत्व, कर्तव्य के प्रति अनूठे समर्पण ने उनकी कम्पनी को आखिरी साँस और आखिरी गोली तक बहादुरी से लड़ने के लिए प्रेरित किया। मेजर शैतानसिंह ने निर्भीकता का ऐसा इतिहास रचा जिसका कोई सानी नहीं। मेजर शैतानसिंह को (मरणोपरान्त) देश में बहादुरी का उच्चतम सम्मान 'परमवीर चक्र' प्रदान किया गया। 13 कुमाऊ की 'सी' कम्पनी ने शूरवीरतापूर्ण युद्ध कर चीनियों के तीन आक्रमणों को पीछे धकेला और कम्पनी के 114 में से 106 सैनिकों ने अपना महान बलिदान दिया। फरवरी 1963 में जब रेजांग ला गये तो मोर्चों में अपने हथियारों को हाथ में लिए शहीद सैनिक पाये गये। इस युद्ध में 500 चीनी सैनिक मारे गये व घायल हुए, ऐसा अनुमान है।

मेजर शैतानसिंह (PVC) और उनकी कम्पनी द्वारा प्रदर्शित नैतिक मूल्य :

नैतिकता और मूल्यों के दृष्टिकोण से जब हम इस ऐतिहासिक युद्ध का विश्लेषण करते हैं तो बहुत सारी अच्छाइयों की पुष्टि होती है। वफादारी इसका एक ज्वलंत उदाहरण था। सभी सैनिकों ने अपने कर्तव्य से कहीं बढकर अपनी भूमिका निभाई और वे सभी मेजर शैतानसिंह की टीम के उपयोगी सहभागी बने उन सबने अपने साथियों के प्रति नैतिक कर्तव्य निभाया। उनके अपने नेता के प्रति उत्कृष्ट सम्मान व उनके आत्म-सम्मान ने उन्हें सर्वोच्च बलिदान के लिए प्रेरित किया। मेजर शैतानसिंह की कम्पनी के अलावा संसार में किसी ने अपने कर्तव्य व देशभक्ति के प्रति इतनी निष्ठा नहीं दिखाई। अपने बारे में न सोचते हुए अन्तिम साँस तक लड़ना निस्वार्थ सेवा का असाधारण उदाहरण है। मेजर शैतानसिंह के अधीन नैतिक कर्तव्य और निस्वार्थ सेवा देकर उन्होंने इस हद तक सम्मान पाया कि वे हमेशा के लिए श्रद्धेय रहेंगे। इस प्रकार रेजांग ला युद्ध ने दिखाया कि किस प्रकार डर पर विजय पाकर हर सैनिक ने अपने नेता के सर्वोच्च बलिदान के अनुसार साहस प्रकट किया। इस अर्थ में रेजांग ला युद्ध नैतिकता के सभी सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है।

अपनी बटालियन से बहुत दूर रेजांग ला व चुसूल हवाई क्षेत्र के रक्षण की जिम्मेदारी मिलने पर मेजर शैतानसिंह ने दुश्मन की सैनिक स्थिति का सही जायजा लेकर मजबूत रक्षात्मक योजना बनाई व अपने सैनिकों को इस हद तक प्रेरित किया कि वे इस चुनौती का सामना करने के लिये दिल से पूरी तरह से तैयार हो गए। अन्य क्षेत्र में चीनी तेजपुर और मीसामारी के निकट पहुँच गए थे और तब केवल मेजर शैतानसिंह और उनके सैनिक ही देश के लिए आशा की किरण थे। इसलिए वे पूर्ण रूप से बड़ी लड़ाई के लिये तैयार थे। ऐसा क्या था कि मेजर शैतानसिंह व उनकी टीम वो कर सकी जो उन्होंने किया? क्या वो इसलिए हुआ कि वे अपनी बटालियन से अलग-थलग हो गये थे? क्या मेजर शैतानसिंह का नेतृत्व, उनका देश प्रेम और उनके नैतिक मूल्य जिन्हें उनके साथियों ने आत्मसात कर लिए थे, कारण बना? काफी हद तक ये सभी बातें सत्य हैं।

बालपन में हुआ संस्कार-निर्माण व्यक्ति में नैतिक मूल्यों के विकास में सहायक होता है। यह कार्य दो जगह फलीभूत होता है- व्यक्ति के घर में और विद्यालय में। मेजर शैतानसिंह के लिए अपने पिता ले. कर्नल हेमसिंह ओ.बी.ई. (Order of British Empire) द्वारा प्रथम विश्व युद्ध में फ्रांस में प्रदर्शित वीरता उनके लिए नैतिकता का प्रतीक थी। इसलिए वह स्वाभाविक था कि मेजर शैतानसिंह अपने पिता की वीरता व यौद्धिक कर्मों से प्रेरित होकर रणक्षेत्र में उन्हीं की भाँति महिमा प्राप्त करें। चौपासनी स्कूल, जो संयमित अनुशासन, खेलों में उपलब्धियों व बहादुर सैनिक तैयार करने के लिए जानी जाती थी, में प्रधानाध्यापक श्री कुम्भा हरे ने मेजर शैतानसिंह को संवारने में अहम् भूमिका निभाई। मेजर शैतानसिंह ने जिन आन्तरिक मूल्यों को प्राप्त किया था, सेना की नौकरी में बाहरी व्यावहारिक मूल्यों के ज्ञान द्वारा उनमें और वृद्धि की। इस प्रकार उन्होंने अपने साथियों को नैतिक मूल्यों का पाठ पढाया और अपनी टीम में संपूर्ण सामञ्जस्य बनाया तथा उच्च मनोबल से युद्ध के लिये तैयार किया। इस तरह वे आगामी युद्ध के लिए पूरी तरह से तैयार थे और वे तथा उनकी टीम अपनी पवित्र मातृभूमि की एक इंच जमीन भी दुश्मन को देने की बजाए युद्ध करते हुए मरना पसन्द करते थे। लगभग युद्ध की समाप्ति के बाद 3-4 सैनिकों को बटालियन जाकर युद्ध की प्रगति के बारे में बताने को कहा। किन्तु प्रेरणा और सौहार्द का स्तर ऐसा था कि वे पीछे जाने की बजाए अन्तिम साँस तक लड़ना चाहते थे। मेजर शैतानसिंह और उनके साथियों ने अनन्त साहस व वीरता के साथ दुश्मन को रेजांग ला से आगे प्रवेश करने से रोका।

हम नम्रतापूर्वक उनके प्रति हमारी श्रद्धा प्रकट करते हैं और उनकी वीरता से गौरवान्वित हैं तथा उनके नैतिक मूल्यों व मानकों से सदैव प्रेरणा लेते रहेंगे।

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक – पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य–श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद–श्री धर्मेन्द्रसिंह आम्बली

अवतरण–81

बड़े ही मायावी और असुर पद्धति के हैं ये विरोधी। मुझे इतिहास से अज्ञ, संस्कृति से निर्धन और चेतना से निश्चेष्ट करना चाहते हैं ये। मेरे संपूर्ण विनाश के उपकरण जुटा दिए हैं–इन्होंने। साम, दाम, दण्ड, भेद की नाग–फाँस को ऐन्द्रजालिक मंत्रों से आहूत कर मुझे फँसाना चाहते हैं उसमें। पर वे भूल जाते हैं कि मेरे पास भी देव–मंत्रों से अभिमंत्रित आत्म–संकल्प रूपी अजेय ब्रह्मास्त्र विद्यमान है।

बहुरूप करके बहु जोर, इतिहास, संस्कृति, चेतना से रखने मुझे दूर।

साधक इस अवतरण में 'मेरी–साधना' का विरोध करने वाले लोगों का परिचय देते कहते हैं- वे मायावी और आसुरी प्रकृति के लोग हैं। मायावी का मतलब जैसा हो, जो हो, उससे अलग दिखाना। रावण साधु वेश में सीता का हरण करने आया था। आसुरी वृत्ति का मतलब दूसरों के हक (अधिकार) को ले लेना। झपट लेना। यह काम तो इन लोगों ने हमारी सम्पत्ति हड़पकर कर लिया है। इतने से इनको संतोष नहीं है। हमको सत्वहीन और स्वत्वहीन बनाने की इनकी योजना है। इस योजना में ये हमारे इतिहास को अज्ञात रखना चाहते हैं। सच्चे इतिहास की जगह झूठा इतिहास पढाना, यह इतिहास से अज्ञात रखने का एक उपाय है। अभ्यास में इतिहास का महत्त्व ही नहीं, प्रेरणादायी ऐतिहासिक पात्रों को, निम्न कर दिखाना आदि। पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' में लिखा है-महान् अकबर भारत को एक सूत्रता में बाँधना चाहता था, जो प्रताप ने न होने दिया। कहने का अर्थ है कि राष्ट्रहित का काम प्रताप ने न होने दिया।

भारतीय संस्कृति, क्षत्रिय संस्कृति त्याग, बलिदान, परोपकार, संवेदनशीलता, समर्पण भाव, सर्वजन हिताय–सर्वजन सुखाय की सरिता है। उसकी जगह भोगवादी, स्वार्थी संस्कृति निर्माण करके हमको उसका शिकार बनाकर पंगु बना दिया है। यह सब हम हमारे आज के व्यवहार से समझ सकें वैसी प्रत्यक्ष बाते हैं। चेतनाहीन अर्थात् मुर्दा जैसा निर्बल, रंक, कायर बनाना चाहते हैं। यह बात भी पिछले 70 वर्षों के अनुभव से समझ में आने जैसी है। इसी के कारण राजकीय क्षेत्र में हम दूसरों की दया पर जीते हैं।

वे साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति अपना कर, भोग, लालच और प्रलोभनों द्वारा हमको पतन के, विनाश के मार्ग पर ढकेल रहे हैं। हम उनके शिकार बनते जा रहे हैं।

'मेरी–साधना' यानी 'श्री क्षत्रिय युवक संघ' ऐसे षड़यंत्र के सामने ललकार देकर अड़िग खड़ा है। साधक कहता है-तुम्हारी मायावी, असुर लोगों की चाल में हम भ्रमित हो जाएँ, फँस जाएँ, ऐसे हम नहीं हैं। हममें क्षात्रत्व का खून बहता है। हम राम, कृष्ण, प्रताप, शिवाजी और दुर्गादास के वंशज हैं। साधक आगे कहते हैं-'मेरे पास भी देव–मंत्रों से अभिमन्त्रित, आत्म–संकल्प रूपी अजेय ब्रह्मास्त्र विद्यमान हैं।'

दुर्भाग्य से हमारे समाज का बड़ा वर्ग ऐसे चिंतन से, विचार से, वंचित है। समाज का बड़ा वर्ग 'मैं और मेरा' ऐसे स्वार्थी चिंतन का ही धनी है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ 'मैं और मेरा' जैसे हित चिन्तन से रोकने के लिए पुरुषार्थ पूर्वक भागीरथ प्रयास भली प्रकार कर रहा है। हमारे परम वंदनीय पू. राजर्षि मुनी अपने उपदेश में क्षत्रिय को क्षात्रत्व का ज्ञान देते हैं। दुर्भाग्यवश समाज जैसे आँख, कान गंवा चुका हो; पू. श्री के उपदेश का प्रभाव होता नजर नहीं आता।

इस बारे में हमारे समाज के अगवा लोग कुछ

सोचते होंगे अथवा नहीं उसका हमें मालूम नहीं। किन्तु समाज का मार्गदर्शन करने वाले, अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक होंगे ही और समाज के हित के बारे में वे लोग चिन्ता और चिंतन करते ही होंगे। ऐसी श्रद्धा और आशा रखें। इसके अलावा समाज का बौद्धिक युवा वर्ग श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृत्ति देखने, समझने, पहचानने और धारण करने के लिए जागरूकता के साथ सक्रिय बनें यह समाज की आवश्यकता है। माँग है।

इस माँग को इस आवश्यकता को अनदेखा या अनसुना न करें, अगर उनके अन्तर में, दिल के किसी कोने में थोड़ी बहुत भी समाज पीड़ा छुपी पड़ी हो तो, श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृत्ति को देखें, जानें, अनुभव करें और धारण करें। साथ में परम वंदनीय पू. मुनीश्री के उपदेश को अपना जीवन मंत्र बनावें। यदि युवा इस बारे में सोचने लगें, सक्रिय हो जाएँ तो समाज के घोर अंधकार को स्वर्णिम सुप्रभात में बदलते देर नहीं लगेगी। ऐसा स्वर्णमयी सुप्रभात देखने का भाग्य सभी को प्राप्त हो, ऐसी परमेश्वर से प्रार्थना।

अर्क– सामाजिक क्षेत्र की उपेक्षा समाज के पतन का मार्ग खोलती है।

अवतरण–82

लोग कितने निकटदर्शी और अल्पज्ञ हैं। मेरी साधना की महत्ता समझे बिना ही कह पड़ते हैं, ''कुछ चमत्कार बताओ,–शक्ति का प्रदर्शन करो।'' उन्हें कैसे समझाऊँ कि उनकी कल्पना की ऐसी बहिर्मुखी साधना सदैव विफलता से ओतप्रोत रहती है पर अन्तर्मुखी साधना उस अजेय और अखण्ड शक्ति का निर्माण करती है जिसे प्रदर्शन की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

अल्पज्ञ और दृष्टिहीन चाहे चमत्कार। सत्य–साधना को न प्रदर्शन की दरकार।

इस अवतरण के प्रथम वाक्य के दो शब्द 'निकटदर्शी और अल्पज्ञ' हमारे समाज के प्रतिबिम्ब समान नहीं लगते? इन दो शब्दों को हम अच्छी तरह समझेंगे तो समाज की वास्तविक स्थिति क्या है, कैसी है, उसका सही अन्दाजा लगने की संभावना है।

समाज के बौद्धिक वर्ग के सज्जनों, किसी प्रोफेसर साहब, किसी डाक्टर साहब, किसी उद्योगपति से रूबरू मिलना हुआ तब प्रतिक्रिया दी–'मैं मेरी साधना का लेख नियमित पढता हूँ। समाज के लिए उपयोगी है।' इस प्रतिभाव ने ऊपर के शब्दों की चर्चा करने की हिम्मत दी है। इसीलिए समाज के जचने या नहीं जचने के बारे में सोचने की जगह समाज के हित में जो हो वैसा लिखने का निर्णय मेरी साधना के अवतरण शिखर की ओर बढ रहे हैं तब किया है। निन्दा सुननी व सहनी पड़े, वह प्रसन्न मुख से सहने की मानसिकता बना ली है। आज दिन तक मैं लिखूँ और कुछ न जचे, इसके बदले में 'पथ प्रकाश प्रेरणा' (मासिक जिसमें भाष्य प्रकाशित हुआ था) को दण्ड भुगतना पड़े ऐसा मन में डर रहता था किन्तु सुविज्ञ पाठक ऐसा अन्याय नहीं ही करेंगे इस पूर्ण विश्वास के साथ इस अवतरण की चर्चा प्रारम्भ करता हूँ।

साधक कहते हैं कि लघुदृष्टि वाले और अल्पज्ञ लोग मेरी साधना को समझे बिना ही कहते हैं–'कुछ चमत्कार बताओ।' चमत्कार और लघुदृष्टि व अल्पज्ञता का खूब निकट का और गाढा सम्बन्ध है। यहाँ लघुदृष्टि और अल्पज्ञ शब्द को समझने की कोशिश करते हैं। लघुदृष्टि और अल्पज्ञता की जड़ है–अज्ञान और अविद्या। सभी अनिष्टों का मूल भी अज्ञान और अविद्या ही है। अविद्या और अज्ञानता के कारण मनुष्य का, समाज का, राष्ट्र का विकास स्थगित हो जाता है। व्यक्ति, समाज या राष्ट्र अन्धकार में, अंधश्रद्धा में, वहमों में, रूढियों में और अनेक प्रकार के दूषणों में फँसकर रंक, गरीब, गुलाम और पंगु बन जाता है।

अज्ञान और अविद्या के पुत्र लघुदृष्टि और अल्पज्ञता का भोग बनकर अपना समाज (क्षत्रिय समाज) निर्बलता, कुसंप, द्वेष, ईर्ष्या, वहम, रूढियों, कुरिवाजों, अंधश्रद्धा और अनेकों दूषणों का भोग बनकर अपनी बपोती, अपनी वास्तविकता त्याग, बलिदान, समर्पण, परोपकार और पुण्य

के मार्ग से भटक गया। गत अवतरण में हमने देखा, हमारी सम्पत्ति छीन ली गई। इसके लिए दूसरों को दोष देने की बजाए हमने हमारी योग्यता खो दी, अपना कर्तव्य भूल गये, फर्ज का भान ही न रहा, स्वार्थी बन गये, भोगी बन गए, वैर-द्वेष और कुसंप तथा अहंकार के कारण सत्ता, सम्पत्ति और सम्मान खो बैठे, ऐसा दोष स्वीकार करें और उसका दुख अनुभव करके सन्मार्ग पर चलने की सोच कर समाज के बारे में गहन चिन्तन प्रारम्भ करें तो पुनरोदय की पूरी संभावना है। समाज की चिन्ता और चिन्तन के अभाव में क्षात्रधर्म की शिक्षा देने वाली, जीव मात्र के कल्याण वाली श्रेष्ठ प्रवृत्ति (श्री क्ष.यु.संघ) से चमत्कार बताने की माँग करते हैं। समझे?

चमत्कार है क्या? अज्ञान और अविद्या से जन्मी भ्रमणा के एक प्रकार के अलावा कुछ नहीं।

लघुदृष्टि, अल्पज्ञता जैसे एक-एक शब्द द्वारा साधक हमको बहुत कुछ कहना, समझाना चाहते हैं, ऐसा लगता है। यह सब समझने के लिये सर्वप्रथम हमें समय देना होगा। फिर समझने की रीति, पद्धति, मार्ग की खबर होनी चाहिए। ऐसे ज्यों-ज्यों आगे चलते जाते हैं तो अंत में अविद्या और अज्ञान दूर हो जाए तो उसमें से जन्म लेने वाले सभी अनिष्ट भी समझ में आ जाएँ। अनिष्टों की समझ आ जाने के बाद उनको दूर करने का मार्ग ढूंढ कर उन्हें दूर करने का प्रयास दृढता पूर्वक करना पड़ेगा।

अन्य समाज की बात न करें। हमारे समाज की बात सोचें तो अज्ञान और अविद्या का भोग बनकर हमारा समाज कैसे-कैसे दूषण पाल पोष रहा है, उसकी विगतवार चर्चा करूँ तो आप सभी नाराज होकर रोष कर बैठेंगे, इसलिए इतना काफी है, ऐसा मानकर बन्द करता हूँ।

श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृत्ति को सच्चे अर्थ में समझने की बजाए जब कुछ चमत्कार बताने की माँग उठती है, तब अपनी बौद्धिक कक्षा का थोड़ा अंदाजा पा सकेंगे। श्री क्षत्रिय युवक संध अज्ञान और अविद्या दूर करके समाज में विद्या और ज्ञान की वृद्धि हो इस प्रकार की शिक्षा अपनी 'सामुहिक संस्कारमयी कर्मप्रणाली' द्वारा देता है। शिक्षा के द्वारा समाज में से अनेकों प्रकार की गैर समझ, गैर रीति, दूषण और अनिष्ट समाप्त हों और सच्ची तथा अच्छी समझदारी का विकास होगा। क्षात्रधर्म समझ में आएगा।

ऐसी प्रवृत्ति को चमत्कार का भय पैदा करने की आवश्यकता नहीं है। यह प्रवृत्ति अन्तर्मुखी साधना है, इसीलिए उसे कोई प्रदर्शन दिखावा करने की आवश्यकता नहीं है। कठिन मार्ग है लेकिन श्रेय का मार्ग है। क्षत्रियों को इस मार्ग पर चलकर, क्षात्रधर्म समझ कर, उसको आचरण में ढाल कर भगवान को प्रसन्न करना है। भगवान प्रसन्न होने के बाद, इससे अधिक और हमको क्या चाहिए? जगत में भगवान को प्रसन्न करने में, पाने में कई अलग-अलग मार्ग और मान्यताएँ हैं। उससे भगवान प्रसन्न होते होंगे कि नहीं, मालूम नहीं। किन्तु क्षत्रिय सच्चे अर्थ में क्षात्रधर्म का पालन करे तो भगवान अवश्य प्रसन्न होंगे, ऐसे प्रमाण शास्त्रों में दिए हैं।

पू. गंगा सती के शब्दों में 'माँ राज मेहरबान हो' वैसी अन्तर से सृजनहार को सभी प्रार्थना करें।

अर्क– ईश्वर के दर्शन चर्म चक्षु द्वारा नहीं, अन्तर की अनुभूति से अवश्य होते हैं।

अवतरण–83

मेरी साधना की सरल गति को भी देख नहीं पाते और यदि देखे लेते हैं तो पहचान नहीं पाते, पहचान लेते हैं तो समझ नहीं पाते और समझ लेते हैं तो धारण नहीं कर सकते। तब उसकी वक्रगति का तो कहना ही क्या। उसे देखने, पहचानने, समझने और धारण करने के लिये वर्षों पर्यन्त तपस्या की धूप में तपना पड़ता है। पर जो एक बार मेरी साधना के इस गूढ रहस्य को समझ और पहचान लेता है, उससे संसार का कोई भी कूटनैतिक उद्देश्य छिपा नहीं रह सकता।

सरल गति समझे ना, गहराई का न अभ्यास। गूढ रहस्य जानने को आवश्यक गहरा अभ्यास।

इस अवतरण में साधक हमको श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृत्ति के उद्देश्य को समझना कितना कठिन है, इस बात को समझाते हैं। सामान्य रीति से हम किसी के

कहने से या ले जाने से संघ के किसी शिविर में आवें तो प्रथम दृष्टि में तो हम ऐसी धारणा बना लेते हैं कि इसमें क्या? ये तो छोटे-छोटे बच्चों को इकट्ठा करके खेल खिलाते हैं। इसलिए यह प्रवृत्ति तो बच्चों के लिए है। जो दर्शनीय प्रवृत्ति है उसे देखकर अनजान लोग अधिकतर इसी प्रकार की धारणा बना लेते हैं।

इसीलिए साधक कहते हैं सामान्यतया उसकी (संघ की) जो दर्शनीय सरल गति है उसे लोग देख सकते नहीं। देखते हैं तो उसे पहचानने का प्रयास करने की बजाए, बच्चों की खेलने की प्रवृत्ति है, ऐसी धारणा बनाकर उसे पहचानने और समझने का प्रयास नहीं करते। सौभाग्य से संघ के किसी स्वयंसेवक के साथ निकटता हो और वह आग्रह करके संघ के कार्यक्रमों में ले जाए और वहाँ देखने के बाद उसे थोड़ा परिचय हो, तब थोड़ा सोचकर, उसे पहचानने-समझने जैसी मानकर, प्रवृत्ति है तो अच्छी, ऐसा स्वीकार करते हैं। और यह पहचानने की, समझने की कक्षा में पहुँचने के बाद स्वीकार करते हैं कि प्रवृत्ति समाजोपयोगी है। समाज के हित की है। इतना स्वीकार करने के बाद भी स्वयं उसमें सक्रिय होने की सोचते ही नहीं। प्रवृत्ति अच्छी है। मित्र कहते हैं। उनका आवश्यकता पड़ने पर सहयोग करने की थोड़ी भावना जन्म लेती है। उससे बढकर कुछ नहीं।

इसीलिए साधक कहते हैं, इस प्रवृत्ति को जो देखते हैं वे पहचान नहीं पाते। जो पहचान पाते हैं वे समझ नहीं सकते और जो समझते हैं वे धारण नहीं कर सकते। तब इसकी वक्रगति का तो कहना ही क्या?

संघ की सरल गति यानी जो बाहर से दिखती, वक्रगति का अर्थ है उसका आंतरिक सच्चा स्वरूप। इन दोनों को समझने के लिये तपस्या की धूप में तपना पड़े। किसी विद्वान के मुख से वेद के एक मंत्र का शब्द 'अतपीतका' सुनने को मिला था। उसका अर्थ है जिनका शरीर तपस्या के तप से तपता नहीं है, वे ईश्वर को पहचान, समझ या पा नहीं सकते।

ऐसी ही बात श्री क्षत्रिय युवक संघ की है। जो लोग इस संघ की तपोमय साधना में से नहीं गुजरे हैं उन्हें श्री क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृत्ति या उसका उद्देश्य अच्छी तरह समझ में नहीं आएगा।

सामान्यतया हमारे जीवन में तपस्या, त्याग जैसे उत्तम तत्वों का प्रमाण कम है। हम यानी क्षत्रिय समाज भोगवादी बन बैठा है। परिणामस्वरूप क्षात्रधर्म से दूर हो गया है।

संघ की वक्रगति यानी उसका आंतरिक असली स्वरूप। उद्देश्य तो है क्षात्रधर्म पालन द्वारा मोक्ष-मुक्ति। इस उद्देश्य को समझ लेने वालों से जगत के कोई भी कूट प्रश्न अनजान नहीं रहते।

क्षात्रधर्म के पालन द्वारा मोक्ष-मुक्ति, यह बात समझाने या चर्चा करने जितनी मेरी क्षमता नहीं है। इतनी लम्बी चर्चा के बदले एक छोटी-सी बात समझते हैं। स्वीकार करें कि क्षत्रियों का सार्थक जीवन क्षात्रधर्म पालन करने में ही है। इतना स्वीकार कर जीवन जीएँ तो क्षत्रिय जाति के उत्थान के आडे जगत का कोई अवरोध टिक नहीं सकेगा। ऐसा विश्वास जगाकर क्षात्रधर्म पालन के मार्ग पर चलने का निश्चय करें। परमेश्वर को प्रार्थना करें कि हमको हमारे पूर्वजों द्वारा आचरण किए गए श्रेष्ठ मार्ग क्षात्रधर्म पालन करने हेतु समझदारी और शक्ति दे।

अर्क- क्षात्रधर्म विहीन जगत विनाश के पथ पर कदम बढा रहा है।

अवतरण-84

नैराश्य-नदी में गोते लगाने लग जाता हूँ मैं कभी। शैथिल्य, निरुत्साह, आलस्य, प्रमाद, भय और विकलता के क्षण बहुधा आते हैं जीवन में। मेरी इन्द्रियाँ इस प्रकार के अवसरों का अनुचित लाभ उठाकर अधोमुखी होने को तत्पर हो उठती हैं- जीवन-सरिता ढलान की ओर प्रवाहित होना चाहती है, फिसलन आनन्द में रूपान्तरित होती अनुभव होती है। इतने में ही अन्तर्ध्वनि होती है-''साधक! तेरी साधना तो ऊर्ध्वगामिनी है न।''

ललचाता हूँ, लुभाता हूँ, कभी भोग मार्ग से। अन्तर्ध्वनि बचाती है झूठे मार्ग से।

इस अवतरण में साधक मानव स्वभाव के अंग निर्बलपने को स्पष्ट स्वीकार करके हमको (समाज को) बहुत कुछ कह जाते हों वैसा नहीं लगता क्या?

किसी भी मनुष्य को विपरीत परिस्थिति में अपेक्षा अनुसार सहयोग, सहकार प्राप्त होने की बजाए उपेक्षा, विरोध हो तब मनुष्य निरा, हताश और निरुत्साही बनकर स्वयं जो ध्येय और आदर्श लेकर जीता हो, वह छोड़कर भोगवाद-स्वार्थवाद के रास्ते पर चलने का सोचने लगता है। ऐसे क्षणों में हीन वृत्तियाँ उसे आदर्श और ध्येय का मार्ग छोड़कर ऐशो-आराम, भोग-वैभव के मार्ग पर चलने को ललचाती है।

साधक इसी बात का अपने व्यवहार द्वारा, अनुभव द्वारा समाज को कुछ संदेश देते हुए दिखाई देते हैं।

सामान्यतया सामाजिक क्षेत्र में कार्य कर रहे भावनाशील युवकों को जब अपेक्षित सहकार, प्रोत्साहन नहीं मिलता तब वे दुविधा में घिर जाते हैं। क्या करें? इस मुसीबत का उत्तर न मिलने पर अपना मार्ग, कार्य छोड़कर वे अन्य कुछ करने का सोचने लगते हैं। समाज का काम करने का क्या फायदा? इससे तो अपने परिवार के हित की खातिर कार्य करके, कमाई करके भोग-विलास, आनन्द में जीवन बिताना क्या गलत है? समाज का काम निष्ठा से करने वालों को कम या ज्यादा, कभी तो ऐसी परिस्थिति का सामना करना ही पड़ता है। ऐसे विषम समय में यदि मन मजबूत न हो, समाज के प्रति प्रेम और पीड़ा न हो तो किसी लुभावने वाले मार्ग पर भटक जाने की पूरी संभावना रहती है। किन्तु मन दृढ हो, समाज के प्रति भाव मजबूत हो, साथ ही ईश्वर में अटूट श्रद्धा और विश्वास हो तो ऐसे साधक को, कार्यकर्ता को हीन मार्ग पर, पतन की ओर जाने से रोकने के लिये अंतर्ध्वनि सुनने को मिलती है। उसका अंतर कहता है-कहाँ जा रहा है? क्या कर रहा है? यह मार्ग तेरे या समाज के हित का नहीं है। अत: तेरे अपने मूल मार्ग पर ही बढता रह, इसमें ही श्रेय है। प्रश्न है कि यह अन्तर्ध्वनि किसको सुनाई देती है? यह सोचनीय बात है। इस अवतरण के आधार पर कहा जा सकता है कि यह ईश्वर प्रेरित ध्वनि साधक को, अर्थात् जो साधना के मार्ग पर बढ रहा है, उसको सुनाई देती है।

इस अवतरण में हताशा, निराशा, निरुत्साह से घिरे साधक को कैसे-कैसे विचार आते हैं, उन विचारों की ओर बढने की इच्छा प्रबल बनती है, तब साधक को उसके अन्तर की ध्वनि पुकारती है, 'साधक! तेरी साधना तो ऊर्ध्वगामिनी है न।' तब साधक सचेत बनकर अपने ध्येय को प्राप्त करने के लिये ऊर्ध्वगामिनी साधना के कठिन पथ पर आरूढ होकर सामाजिक ध्येय सिद्ध करने के लिये पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ अग्रसर होता है और युवा कार्यकर्ताओं को प्रेरणा व प्रोत्साहन देता है।

ऐसे अवतरणों में से बोध लेकर कभी हमको स्वयं अपनी कसौटी करनी चाहिए। स्वयं के व्यक्तिगत स्वार्थ और हित या सामाजिक हित में से किसको महत्त्व देना, किसे प्राथमिकता देना, ऐसी दुविधा आ पड़े तब हम क्या करते हैं? व्यक्तिगत स्वार्थ या हित को ठोकर मारकर सामाजिक हित को प्रधानता देते हों तो हम भी साधक हैं। साधक बनने के लिये ईश्वर के बारे में सच्ची समझदारी प्राप्त करके ईश्वर में दृढ विश्वास और संपूर्ण श्रद्धा प्राप्त करनी चाहिए।

परमेश्वर को प्रार्थना करें, हमारे में उनके प्रति दृढ विश्वास और पूर्ण श्रद्धा जगा दें।

अर्क- धर्म के कंटकाकीर्ण मग पर, धीरज से मैं कदम बढाऊँ। **– पू. तनसिंहजी** **(क्रमश:)**

वाक्यों की झड़ी, तर्कों की धूलि और अंधबुद्धि- ये सब आकुल-व्याकुल होकर लौट जाती हैं। किन्तु विश्वास तो अपने अन्दर ही निवास करता है। उसे किसी प्रकार का भय नहीं।

– रविन्द्रनाथ टैगोर

पानरवा के सोलंकी शासक

– संकलित

मेवाड़ रियासत का दक्षिणी पश्चिमी क्षेत्र भोमट कहलाता है। ईडर, सिरोही, गोगुंदा, झाड़ोल आदि के बीच अरावली पर्वतमाला के सघन वनों से छाये इस पहाड़ी क्षेत्र पर 12वीं सदी तक भीलों की कबीलाई व स्वायत्त सत्ता थी। विभिन्न कबीलों में बंटे आदिवासी आपस में लड़ते रहते थे और सघन व दुर्गम क्षेत्र होने के कारण आसपास के बड़े राज्यों के लिए यह क्षेत्र विशेष आकर्षण का क्षेत्र नहीं था। 12वीं सदी के बाद यहाँ राजपूतों की विभिन्न खांपों का प्रवेश प्रारम्भ हुआ एवं उन्होंने अपनी स्वतंत्र सत्ता कायम की। सर्वप्रथम यहाँ गुजरात से यदुवंशी क्षत्रिय आये और पानरवा पर अपनी सत्ता कायम की। इनके बाद बागड़िया चौहान आये और उन्होंने पहाड़ा व जवास क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। 1398 ईस्वी में यहाँ चौहानों की एक अन्य शाखा सोनिगरा चौहान ईडर की तरफ से प्रविष्ट हुई और जूड़ा कोटड़ा पर अपना आधिपत्य स्थापित किया।

1478 ईस्वी में सोलंकी इस क्षेत्र में आये। 1299 में गुजरात से सोलंकियों का शासन समाप्त होने के बाद वे देश के विभिन्न भागों में बिखर गये। उनमें से एक शाखा भिणाय की तरफ आई जिसे राणकिया कहा गया। उसी राणकिया शाखा के रायमल के नेतृत्व में कुछ परिवार सिरोही रियासत के लास गाँव के रहवासी हुए। 1477-78 ईस्वी में सिरोही के राव ने इनको लास से निकाल दिया और इनमें से अधिकांश मेवाड़ के महाराणा के अधीन देसूरी क्षेत्र में आ गए। कुछ परिवार अक्षयराज के नेतृत्व में भोमट क्षेत्र में आये और पानरवा के यदुवंशी शासक जीवराज यादव से संघर्ष में उसे मारकर 1478 में पानरवा पर अधिकार कर लिया। अक्षयराज स्वयं शासक बन गया और इस प्रकार पानरवा में सोलंकी शासन की स्थापना हुई। भोमट के इस बीहड़ क्षेत्र के सभी राजपूत शासकों ने अपने स्वयं के पुरुषार्थ से भूमि को जीता और राज्य स्थापित किया, उन्हें किसी बड़े शासक द्वारा ये ठिकाने नहीं दिए गये इसलिए इन्हें भोमिया सरदार कहा गया एवं इस 1550 मील क्षेत्रफल वाले क्षेत्र को इसीलिए भोमट कहा गया।

अक्षयराज सोलंकी रावत की उपाधि के साथ पानरवा के शासक बने। अक्षयराज के बाद राजसिंह रावत बने। उनके तीन विवाह क्रमश: भावनगर के चावड़ों, सूत के पंवारों व बेगुं के चुंडावतों के पूर्वज हमीरसिंह के यहाँ हुए। इनके बाद रावत महिपाल हुए और इनके विवाह भी चतरकंवर जी पंवार, राजकंवर जी देवड़ी व मोती कंवरजी सिसोदिणी से हुए। रावत महिपाल के बाद उनके पुत्र रावत हरपाल शासक बने। इसी समय 1567 ईस्वी में अकबर ने मेवाड़ पर आक्रमण किया। महाराणा उदयसिंह ने सामंतों के आग्रह पर चित्तौड़गढ़ राव जयमलजी आदि के जिम्मे सौंपकर सुरक्षित आवास हेतु पहाड़ों की ओर प्रस्थान किया। वे भोमट क्षेत्र में आये और रावत हरपाल का आतिथ्य स्वीकार किया। रावत हरपाल ने उनकी सुरक्षा व व्यवस्था का जिम्मा लिया। महाराणा उदयसिंह उनके आतिथ्य से कृतकृत्य हुए एवं उनको राणा की उपाधि प्रदान की। तब से पानरवा के शासक रावत की अपेक्षा राणा कहे जाने लगे। महाराणा उदयसिंह ने राणा हरपाल की बहिन से विवाह भी किया। यहीं से पानरवा के सोलंकियों की मेवाड़ के साथ घनिष्ठता प्रारम्भ हुई जो कालांतर में प्रगाढ़ होती गई। राणा हरपाल के विवाह भी सलुंबर, बड़ी सादड़ी, बेदला आदि नामचीन ठिकानों में हुए। राणा हरपाल के बाद उनके उत्तराधिकारी दूदा राणा बने लेकिन वे अल्प समय ही शासक रहे।

उसके बाद राणा पूंजा पानरवा के राणा बने जो मेवाड़ के स्वातंत्र्य संग्राम के अग्रगण्य नायक हैं। राणा पूंजा 20 फरवरी, 1572 में महाराणा प्रताप के राज्याभिषेक समारोह में भी शामिल हुए थे। इतिहास प्रसिद्ध हल्दीघाटी

के युद्ध में राणा पूंजा अपने भील सैनिकों के साथ महाराणा की फौज के चंदावल (पीछे का भाग) में शामिल थे। उन्होंने अपने भील सैनिकों के साथ खुले मैदान की अपेक्षा पहाड़ी क्षेत्र में मोर्चा ले रखा था। क्योंकि पूरा भोमट क्षेत्र मूल रूप से आदिवासी भीलों का निवास स्थान था इसलिए उनकी पूरी सेना भीलों की ही थी। विभिन्न ऐतिहासिक ग्रंथों में राणा पूंजा को भीलों का सरदार लिखा गया है और वही अपभ्रंश होते होते भील सरदार हो गया। इसी अपभ्रंश का राजनीतिक चालबाजियाँ के लिए जातीय तुष्टिकरण करने वाले लेगों ने दुरुपयोग किया और राणा पूंजा को भील बता दिया। हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा द्वारा खुले मैदान से पहाड़ियों में लौटने के साथ ही राणा पूंजा भी सेना सहित महाराणा के साथ कोल्यारी पहुंचे और वहीं से गोगुंदा का घेराव किया जहाँ मानसिंह जी मुगल सेना सहित ठहरे थे। यह घेराव इतना कड़ा था कि मुगल सेना से बाहरी संपर्क के सभी मार्ग अवरुद्ध हो गये और उन्हें कच्ची केरियाँ खाकर समय गुजारना पड़ा। इसके बाद चले लम्बे छापामार संघर्ष में राणा पूंजा अपने सैनिकों सहित महाराणा के सक्रिय सहयोगी बने रहे। 1579 में महाराणा ने पानरवा क्षेत्र को छोड़कर चावंड को अपनी राजधानी बनाई। दिवेर के निर्णायक युद्ध के बाद शान्ति काल में भी राणा पूंजा का महाराणा प्रताप के साथ संपर्क, सहयोग एवं सम्मान बना रहा। राणा पूंजा के बाद राणा राम महाराणा अमरसिंह के सहयोगी बने रहे एवं महाराणा राजसिंह के समय राणा चन्द्रभान उनके औरंगजेब से हुए संघर्ष में प्रमुख सहयोगी थे। मेवाड़ के प्रमुख सहयोगी होते हुए भी पानरवा के सोलंकी शासकों ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखा, वे मेवाड़ के अन्य उमरावों की भाँति महाराणा को वार्षिक खिराज नहीं देते थे और ना ही महाराणा के प्रति अनिवार्य सैनिक सेवा में बंधे थे। ब्रिटिश कालीन भारत में यह स्वतंत्रता कायम नहीं रह पायी और अंतत: 1838 में वे मेवाड़ के महाराणा के औपचारिक मातहत बने एवं अपने ठिकाने की वार्षिक आय का 10वां भाग (दशूंद) मेवाड़ के राजकोष में देना स्वीकार किया। उस समय पानरवा के शासक राणा प्रतापसिंह थे। आजादी के समय यहाँ राणा मोहब्बतसिंह शासक थे।

इस प्रकार रावत अक्षयराज से लेकर राणा मोहब्बतसिंह तक की 21 पीढियों का पर्याप्त वर्णन मौजूद है जिसके अनुसार पानरवा के शासक सोलंकी राजपूत रहे हैं। इनके विवाह संबंध आदि सभी व्यवहार स्वाभाविक रूप से राजपूतों में रहे हैं लेकिन इन सबके बावजूद आधुनिक राजनीतिज्ञों व राजनीति से प्रेरित विचारधाराओं ने इस वंश के प्रतापी पुरुष राणा पूंजा को भील घोषित कर दिया और सभी प्रकार के वैध ऐतराजों को नकार कर सत्ता के बल पर उनकी भील वेश में मूर्ति स्थापित कर दी। आधुनिक प्रचार तंत्र का उपयोग कर राणा पूंजा को भील जाति का प्रचारित भी कर दिया और इसके लिए मिथ्या तथ्य भी गढ़ लिए। तथाकथित संस्कृति रक्षक दल अपने स्तर पर अपनी सुविधानुसार संस्कृति को परिभाषित करने लगे और उसी का परिणाम है कि महान क्षत्रिय महापुरुषों की जातियाँ बदल कर जातीय तुष्टिकरण के एक के बाद एक प्रयोग कर रहे हैं। उसी प्रयोग के शिकार राणा पूंजा सोलंकी हुए, पन्नाधाय खींची हुई। अभी हाल ही में महाराजा सुहेलदेव हुए और सम्राट मिहिरभोज, सम्राट पृथ्वीराज आदि पर भी इस प्रकार के प्रयोग प्रारम्भ हो चुके हैं। इन सब प्रयोगों से हमारे महान पूर्वजों की मूल पहचान को बचाने के लिए आवश्यक है कि हम हमारी इस विरासत के प्रति जागरूक होवें। हमारे महापुरुषों को स्मरण कर उनसे प्रेरणा लेने के लिए उद्धत होवें एवं इतिहास का अध्ययन करें।

संदर्भ : डॉ. देवीलाल पालीवाल लिखित पुस्तक 'पानरवा का सोलंकी राजवंश'

जिस प्रकार दूसरों के अधिकार की प्रतिष्ठा करना मनुष्य का कर्तव्य है, उसी प्रकार से अपना मान धारण रखना भी उसका कर्तव्य है।

– स्पेन्सर

विज्ञान के सिद्धान्त व संघ कार्य

– रणजीतसिंह आलासण

मेण्डल का आनुवांशिकता का सिद्धान्त व लैमार्क का उपार्जित लक्षणों की वंशागति का सिद्धान्त। मेण्डल का सिद्धान्त कहता है कि जैसे रंग, रूप, लक्षण, स्वभाव और गुण माता-पिता या पूर्वजों में होते हैं, वैसे ही उनकी संतानों में भी होते हैं। संतान की पूर्वज प्रथम पीढ़ी माता-पिता से 1/2 आधे, दूसरी पूर्वज पीढ़ी दादा-दादी व नाना-नानी से 1/4 ऐसे ही आगे 1/8, 1/16, 1/32.. गुण संतानों में अपने पूर्वजों से प्राप्त होते हैं। यह सिद्धान्त यह सिद्ध करता है कि हमारे पूर्वज राम, कृष्ण, महाराणा प्रताप, दुर्गादास राठौड़.... आदि हजारों महापुरुष हुए हैं जो संसार के मार्गदर्शक थे। भगवान ने भी बार-बार हमारे कुल में ही जन्म लिया है। वैसे तो संसार के निर्माता व जनक भगवान ही हैं। लेकिन मेण्डल के नियम के अनुसार हम भगवान की निकटतम संतानें हैं इसीलिए अन्यों की अपेक्षा हमारे अन्दर भगवान के गुणों की बाहुल्यता है।

उपार्जित लक्षणों की वंशागति के सिद्धान्त का एक सर्वविदित उदाहरण जिराफ की गर्दन का मिलता है। पहले जिराफ की गर्दन छोटी थी क्योंकि धरती पर उगी छोटी घास खाकर अपना जीवन यापन करता था लेकिन छोटी घास नष्ट होने पर झाड़ियों व पेड़ से खाने की जरूरत पड़ी तब अपनी गर्दन व पाँवों को ऊपर करके खाना पड़ता था उसके कारण कई पीढियों बाद धीरे-धीरे करके उसकी गर्दन व आगे के पाँव लम्बे हो गए। इसके अनुसार हम जिस परिस्थिति में रहेंगे व जिन गुणों के उपार्जन का अभ्यास करेंगे हम भी वैसे ही बनेंगे व हमारी आने वाली पीढियों में भी वैसे ही गुणों का विकास होगा।

ये दोनों सिद्धान्त व श्री क्षत्रिय युवक संघ के कार्यों को देखा जाए तो मेण्डल के आनुवांशिकता के सिद्धान्त के अनुसार हमारा इतिहास बताकर हमें बोध करवाया जाता है कि हमारे अन्दर श्रेष्ठ आनुवांशिक लक्षण हैं। हम ऐसे महापुरुषों की संतानें हैं जिनके साहस, बलिदान, धैर्य, युद्ध में दक्षता की किसी अन्य कुल से तुलना नहीं की जा सकती है। दूसरे सिद्धान्त के अनुसार जैसा हम अभ्यास करेंगे हम भी वैसे ही बनेंगे व हमारी आने वाली पीढ़ियाँ भी वैसी ही बनेगी। संघ हमारे अंदर अच्छे गुणों के विकास का अभ्यास करवाता है जिससे हमारे अन्दर अच्छे गुण विकसित हों व हमारी आने वाली पीढ़ियों में भी आनुवांशिक अच्छाईयों के साथ अभ्यास द्वारा निरंतर अच्छाइयाँ उपार्जित की जाए जिससे हमारी आने वाली पीढ़ियाँ हम से भी बेहतर हों।

साधक जीवन में कर्तव्य से भिन्न कोई अधिकार नहीं होता। मेरा उत्तरदायित्व ही मेरा अधिकार है। दूसरे की सेवा करने का मुझे अधिकार है और वही मेरा उत्तरदायित्व है, तो वही मेरा अधिकार है। इन्हीं अधिकारों की मुझे हठ-पूर्वक रक्षा करनी चाहिए। लोक दृष्टि से प्रभावित होकर साधना में प्रवृत होने की अपेक्षा अधिकार रक्षा के दृष्टिकोण से ही साधना करना अधिक सात्विक और निरापद है। जो साधक स्वेच्छा से अपने अधिकारों को छोड़ता है, वह स्वेच्छा से ही अपने उत्तरदायित्वों को छोड़ता है।

– पू. तनसिंहजी

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

– स्वामी जगदात्मानन्द

क्रोध से भ्रम उत्पन्न होता है। भ्रम से स्मृतिलोप, स्मृतिलोप से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश हो जाने के फलस्वरूप व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता है।

– भगवद्गीता

चिन्ता, क्रोध, भय आदि आपके रक्तसंचार, पाचन और स्नायुतंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। ये नकारात्मक भावनाएँ आपके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। मैंने किसी व्यक्ति को कठिन परिश्रम के फलस्वरूप मरते हुए नहीं देखा, पर मैंने अनेक लोगों को मानसिक तनाव तथा चिन्ताओं के दुष्प्रभाव से मरते हुए देखा है।

– डॉ. चार्ल्स मेयो

चिकित्सक सबसे बड़ी गलती यह करते हैं कि वे मन के इलाज का प्रयास किए बिना ही शरीर की चिकित्सा का प्रयास करते हैं। मन तथा शरीर सहबद्ध हैं और उनका पृथक-पृथक उपचार नहीं किया जाना चाहिए।

– प्लेटो

चिता मुर्दे को जलाती है, परन्तु चिन्ताएँ व्यक्ति को जिन्दा ही जला डालती हैं।

– एक भारतीय कहावत

पेट का अलसर इस बात पर निर्भर नहीं करता कि आप क्या खा रहे हैं, बल्कि इस बात पर कि आपको कौन-सी चिन्ता खा रही है।

– डॉ. जोसेफ एफ. मॉन्टेग

बीमारी, विफलता या कष्ट से भयभीत होना मानो अचेतन मन में ऐसे बीज बोना है, जिनसे शरीर तथा मन में रोगी मनोभावों, विक्षुब्ध विचारों, भ्रामक मनोदशाओं और गलत कृत्यों की फसल तैयार होगी।

अचेतन मन से किसी भी बुरे संस्कार को दूर करने के लिये उसके स्थान पर उसके ठीक विपरीत अच्छे संस्कार उत्पन्न करना होगा। केवल मानसिक शक्ति, प्रतिरोध या नकारने के द्वारा बुरे संस्कारों को दूर नहीं किया जा सकता है, अच्छे संस्कार उत्पन्न कीजिए और बुरे संस्कार अपने आप ही चले जाएँगे।

– क्रिश्चियन डी. लारसन

आप दु:खी तभी हो सकते हैं जब आपके पास सुखी या दु:खी होने के लिए खाली समय हो।

– बर्नार्ड शॉ

बुरी-से-बुरी अवस्था को स्वीकार कर लेने से ही मन की सच्ची शान्ति प्राप्त होती है।

– लिन युतांग

चिन्तामुक्त रहो :

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास के इस युग में हमारा जीवन जटिल हो गया है और तनाव हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। हम राजनीतिक विवादों के दलदल में फँस गए हैं। जीविका-निर्वाह तथा आत्मरक्षा हेतु हमें सर्वत्र तीव्र प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। छिपे या खुले तौर पर विभिन्न धार्मिक वर्गों, जातियों और तबकों के बीच हिंसात्मक संघर्षों ने हमारा संतुलन बिगाड़ डाला है। इन परिस्थितियों में आन्तरिक शान्ति तथा मानसिक सन्तुलन को बनाए रखने की पद्धति का ज्ञान न होने पर चिन्ता और तनाव हमें निश्चय ही अभिभूत कर डालेंगे। मानसिक विक्षोभों का व्यक्ति के शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। समूचे विश्व के स्नायु-रोग-चिकित्सक इस बात को प्रमाणित कर चुके हैं। चिन्ता, तनाव तथा भय के एकत्र होने तथा अन्तत: भयावह रोगों में परिणत हो जाने के पूर्व, उन्हें उनकी प्रारम्भिक अवस्था में ही उखाड़ डालना अच्छा है। जब ऐसी कोई बीमारी अबाध रूप से बढ़ने लगती है, तो हम असहाय होकर चिकित्सक के पास दौड़ने लगते हैं। यदि हम कुछ मूल्यों और सिद्धान्तों के अनुसार अपना जीवन यापन करना सीख लें, तो हम चिन्ता और तनाव के इन गम्भीर परिणामों से बच सकते हैं। घर में आग लग जाने के बाद कुआँ खोदने का प्रयास कितना मूर्खतापूर्ण है। अतएव

चिन्ता के प्रसार को रोकने के लिये हमें आज ही उपयुक्त कदम उठाना होगा।

चिन्ता का फन्दा :

एक बार मेरे एक मित्र ने एक विचित्र बीमारी के बारे में बताया, जिससे वह ग्रस्त था। उस समय सहसा उसका सिर चकराने लगा था और उसे कई बार उलटी हुई। बिस्तर से उठने के प्रयास में उसे कष्ट महसूस होने लगा। औषधियों से कोई लाभ नहीं हुआ। विचित्र बात यह है कि वह बीमारी, जिससे उसके चिकित्सक लोग इतने भ्रमित हो गए थे, जितनी जल्दी शुरू हुई, कुछ समय बाद उतनी ही शीघ्रता से लुप्त भी हो गयी। बाद में पता चला कि इसका कारण अतिशय दुश्चिन्ता थी। वह बीमारी तब प्रकट हुई, जब उसे पता चला कि उसका मित्र गम्भीर रूप से दुर्घटनाग्रस्त होकर अस्पताल में भर्ती है। फिर उसने ज्यों ही सुना कि उसका मित्र अब खतरे से बिल्कुल बाहर है, तो उसकी वह विचित्र व्याधि लुप्त हो गयी। इस घटना के पीछे क्या रहस्य था? उसकी चिन्ता इस बात से शुरू हुई कि उसके मित्र ने उसकी गारण्टी पर बैंक से एक बड़ा कर्ज ले रखा था। वह इस बात को लेकर चिन्तित था कि यदि मित्र का देहान्त हो गया, तो वह उस कर्ज को कैसे चुकाएगा। परन्तु उसका मित्र ज्योंही स्वस्थ हुआ, त्योंही वह उस चिन्ता से मुक्त हो गया और बिमारी के लक्षण भी चले गए।

वाल्मीकि मुनि कहते हैं–''एक विषधर सर्प एक बालक को डसकर मार डालता है, पर चिन्ता मनुष्य को जकड़कर उसका विनाश कर डालती है। दु:खी, चिन्तित तथा हताश व्यक्ति चाहे जो भी करे, अन्तत: वह स्वयं को ही बरबाद कर डालता है।''

तनाव का बोझ :

एक व्यक्ति एक बड़ी कम्पनी के उप-प्रबन्धक थे। वे एक दक्ष तथा जिम्मेदार अधिकारी के रूप में जाने जाते थे और अन्तत: उन्हें महाप्रबन्धक बना दिया गया। इस कार्य में उनकी सहायता हेतु अनेक लोग नियुक्त थे, तथापि प्रबन्धक बनने के पन्द्रह दिनों के भीतर ही वे दिल की तेज धड़कन और भय से पीड़ित होने लगे। रात में उन्हें अच्छी नींद भी नहीं आ पाती थी। चिकित्सकों ने बताया कि उनके कार्यभार में अत्यधिक वृद्धि के कारण ही ऐसा हुआ है। महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने हों या असहयोगी कर्मचारियों का सामना करना हो, वे सर्वदा स्वयं को थका हुआ तथा परिस्थितियों से तालमेल बिठा पाने में असमर्थ पाते थे। वे स्वीकार ही नहीं कर पाते थे कि वे उनकी बीमारी के मनोवैज्ञानिक लक्षण हैं। परन्तु उनके चिकित्सकों का निश्चित मत था कि मानसिक तनाव ही इसका एकमात्र कारण था। चिकित्सकों के परामर्श पर वे छुट्टी लेकर चले गए। उनकी अनुपस्थिति में एक अन्य अधिकारी ने दक्षतापूर्वक उनका कार्य संभाल लिया। उसने सभी कार्यों को सुचारू रूप से सम्पन्न किया तथा समस्याओं को निपटाया। बाद में छुट्टी बिताकर लौट आने पर उनको अपने कार्य के संचालन में कोई कठिनाई महसूस नहीं हुई और वे स्वस्थ हो गए।

डॉ. अलेक्सिस कैरेल ने ठीक ही कहा है, 'जो व्यवसायी चिन्ताओं से निपटना नहीं जानते, वे अल्पायु में ही काल-कवलित हो जाते हैं।'

मौन–व्यथा :

एक अच्छे खानदान की, उच्च शिक्षा प्राप्त तथा सदाचारी युवती थी। उसके पति सुयोग्य और अच्छे पद पर कार्यरत थे। विवाह के शीघ्र बाद ही उसे पता चला कि उसका पति शराबी है। उसे काफी दु:ख हुआ, पर वह हताश नहीं हुई। उसने अपने पति की यह आदत छुड़ाने के लिये साहस तथा धैर्यपूर्वक प्रयत्न किया। दो वर्षों तक लगन के साथ वह अपने इस प्रयास में जुटी रही, परन्तु पड़ोसियों के व्यंग-बाणों को सह पाना उसके लिए असह्य हो उठा। जब उसका पति सुरापान करके घर आता और उसके साथ बुरा बर्ताव करता, तो वह अवसाद से टूट जाती। निराशा के घने बादल क्रमश: उसके मन तथा जीवन को तमसाच्छन्न करने लगे। सुखद भविष्य का उसका स्वप्न चूर-चूर हो गया। वह शरीर के दर्द, अनिद्रा तथा थकावट से पीड़ित हो गयी। ये सभी चिन्ता के दु:खद

उपहार हैं। संकट से मुक्ति और मानसिक शान्ति बनाए रखने के लिये धैर्य तथा साहस का आश्रय लेने की जरूरत है। तो फिर उपाय क्या है? ऐसे उत्कृष्ट गुण हम कहाँ से प्राप्त करें?

तनाव से संकट :

एक उत्साही युवा कर्मचारी था। वह कपड़े की एक दुकान में प्रात: से सायंकाल तक निष्ठापूर्वक कार्य करता था। एक दिन गलत सूचना या सन्देह के आधार पर उसका मालिक क्रोध में उस पर चिल्ला उठा, 'यह मूर्खतापूर्ण कार्य तुमने ही किया है।' वस्तुत: उसकी कोई गलती नहीं थी। वह मालिक को समझा-बुझाकर उसकी गलतफहमी दूर करना चाहता था, पर उसका मालिक बीच में ही गरज पड़ा, 'चुप रहो। बातें मत बनाओ। मैं सब कुछ जानता हूँ।' ग्राहकों तथा सहकर्मियों के सामने ही उसका यह अपमान हुआ। अपमान का यह घूँट वह किसी प्रकार पी तो गया, परन्तु उसका मन अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठा। उसने किसी तरह ग्राहकों का हिसाब-किताब तो पूरा कर लिया, परन्तु बाद में चक्कर आ जाने से उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह बैठ गया, नहीं तो जमीन पर गिर पड़ा होता। यह मानसिक आघात का मामला था।

विचार तथा भावनाएँ शरीर पर अपने चिह्न तथा संस्कार छोड़ जाती हैं। मानसिक वृत्तियाँ अच्छा स्वास्थ्य या बीमारियों के लक्षण हैं। बुरे विचार नकारात्मक बदलाव लाते हैं, और भले विचार हितकर परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। यह कोई कल्पित कथा या धार्मिक उपदेशकों की सामान्य रूढ़ोक्ति नहीं है, अपितु वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित तथ्य है।

अलसर चिन्ता का फल है :

सन् 1956 में रूसी वैज्ञानिकों ने अनेक प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि चिन्ता के फलस्वरूप ही पेट में अलसर (घाव) होते हैं। निरंतर भय, तनाव तथा चिन्ता का शरीर पर भयानक प्रभाव होता है। इनके फलस्वरूप रोग से शरीर की रक्षा करने वाली श्वेत रक्त-कणिकाओं का काफी ह्रास हो जाता है। इसके विपरीत, सकारात्मक चिंतन, प्रसन्नता, मानसिक बल और आनन्द से श्वेत रक्त-कणिकाओं में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि होने लगती है। नकारात्मक भावनाएँ हमें ठेस पहुँचाती हैं। चिन्ताएँ बढ़ जाने पर पेट के अलसर से रक्तस्राव आरम्भ हो सकता है। डॉक्टर अलवारिस द्वारा मेयो क्लिनिक में किए गए प्रयोगों ने यह बात सिद्ध कर दी है।

डॉ. अलवारिस ने विभिन्न प्रकार के उदर-रोग से पीड़ित पन्द्रह हजार रोगियों का निरीक्षण किया। उन्होंने उनके पेट-दर्द का कारण ढूँढ निकाला। इसमें रोचक बात यह है कि लगभग बारह हजार रोगियों की पीड़ा का मूल कारण उनके शरीर में नहीं, बल्कि उनके मन में था। रोगियों की समस्या का कारण प्रदूषित जल या वातावरण आदि नहीं थे। भय, चिन्ता, असुरक्षा की भावना, ईर्ष्या और बदलती परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापन में असमर्थता ही एक साथ मिलकर उनके पेट में दर्द उत्पन्न कर रहे थे।

डॉ. जॉन शिंडलर ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। बीस वर्षों तक उन्होंने हजारों रोगियों का उपचार किया और चिन्ता, दु:ख एवं तनाव के कारण हुई उनकी शारीरिक क्षति के आँकड़े एकत्र किए। अपने दीर्घकाल के अनुभव की सहायता से उन्होंने नकारात्मक विचारों से मुक्त होने में रोगियों की मदद की। उनके मतानुसार हमारी आधी बीमारियों का मूल हमारे मन में ही विद्यमान है। डॉ. पीटर ब्लेथ ने अपनी 'Stress Disease : The Growing Plague' ('तनाव-सम्बन्धी रोग : एक बढ़ती महामारी') नामक पुस्तक में माना है कि कुछ निम्नलिखित बीमारियाँ मनोदैहिक गड़बड़ियों के कारण होती हैं- उच्च रक्तचाप, दिल का दौरा, मधुमेह, दमा, गठिया-वातरोग, आधासीसी, मस्तिक में रक्त-अवरोध, एलर्जी, भूख न लगना, घेंघा, त्वचा की बीमारियाँ आदि। हममें से अधिकांश लोग नकारात्मक विचारों और भावनाओं के हानिकारक प्रभावों को जानते तक नहीं हैं। सुखी, उपयोगी और सार्थक जीवन जीने के लिए हमें चिन्ता तथा भय से छुटकारा पाना होगा।

मन और देह दोनों का ही ध्यान रखो :

कल्पना करो कि एक रोगी चिकित्सक के पास जाकर अपनी बीमारी का वर्णन करता है। चिकित्सक यदि महसूस भी करे कि उस रोगी की समस्याएँ दैहिक न होकर मनोवैज्ञानिक हैं, तब भी वह इस बात को स्पष्ट रूप से नहीं कह सकता। चिकित्सक द्वारा चिन्ता, भय तथा द्वेष को घटाने और विश्राम करने की सलाह को कोई भी रोगी सहज ही स्वीकार नहीं करेगा। रोगी की सामान्य प्रतिक्रिया होगी-'यह चिकित्सक मुझे औषधि के बजाए केवल सलाह दे रहा है। इसकी भला किसे जरूरत है?' चिकित्सकों को अपने रोगियों के दैहिक तथा मानसिक-दोनों ही प्रकार के स्वास्थ्य के प्रति सजग रहना चाहिए। स्नेहपूर्वक देखरेख के साथ रोगी का इलाज करने पर चिकित्सकों की सहायता कहीं अधिक प्रभावशाली होती है। वर्षों पूर्व ही प्लेटो ने सुझाव दिया था कि चिकित्सकों को अपने रोगियों के दैहिक तथा मानसिक-दोनों ही आयामों की ओर ध्यान देना चाहिए।

चिकित्सक के लिए रोगी की सामाजिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि, उसके विश्वास तथा बाल्यकालीन अनुभव आदि चीजों का ज्ञान आवश्यक है। इनका मूल्यांकन करने के बाद चिकित्सक अपने रोगी को उन नकारात्मक भावनाओं के हानिकारक प्रभाव के बारे में स्पष्ट रूप से समझा दे, जिनसे रोगी का मन और शरीर अचेतन रूप से आक्रान्त है। इसके साथ ही चिकित्सक को सकारात्मक भावनाओं की सहायता से नकारात्मक भावनाओं को दूर करने का उपाय भी बता देना चाहिए। यह संपूर्ण उपचार है, जिसे मनो-चिकित्सा के नाम से जाना जाता है, पर इसमें समय लगता है। एक रोगी के ऐसे उपचार में लगभग बीस घण्टों की जरूरत पड़ती है। अमेरिका जैसे विकसित देशों में भी, जहाँ एक चिकित्सक एक दिन में औसत 23 रोगियों का इलाज करता है, ऐसी चिकित्सा सबको सुलभ नहीं है, क्योंकि इसमें समय और समर्पण के भाव की जरूरत होती है।

मन में उद्भव :

भय, क्रोध तथा चिन्ताएँ अनेक रोगों का प्रत्यक्ष कारण होती है। रोगों की निम्न सूची उनकी प्रतिशत मात्रा दर्शाती है -

रोग प्रतिशत

1. गर्दन का दर्द-75%, 2. गले की सूजन-90%, 3. पेप्टिक अलसर-50%, 4. पित्ताशय का दर्द-50%, 5. गैस्ट्राइटिस (आंत्रशोध)-99%, 6. चक्कर आना-80%, 7. सिरदर्द-80%, 8. कब्ज-70%, 8. थकावट और दुर्बलता-90%।

नकारात्मक भावनाएँ हानिकारक रसायनों को उत्पन्न करती हैं। अधिकांश लोग इससे अनभिज्ञ रहते हैं और अपनी भावनाओं को नियंत्रित करने का प्रयास नहीं करते। इसीलिए वे बारम्बार पीड़ित होते रहते हैं। क्रोधित होने पर हमारी भौंहें तन जाती हैं, आँखें लाल हो जाती हैं और स्वर कटु हो जाता है। इन लक्षणों को तो हम देखते हैं, पर शरीर-विज्ञानी हमें यह भी बताते हैं कि ये दैहिक लक्षण क्यों प्रकट होते हैं। रक्तचाप और दिल की धड़कन की गति भी बढ़ जाती है। हमारे फिर शान्त होने तक ये परिवर्तन बने रहते हैं। क्रोध हमारे शारीरिक स्वास्थ्य को क्षति पहुँचाता है। इससे मस्तिष्क की रक्त-कोशिकाएँ फट सकती हैं और हृदय-गति रुक सकती है। ये दोनों ही अवस्थाएँ घातक सिद्ध हो सकती है। किसी के लिये भी लम्बे समय तक क्रोधित या दुःखी रह पाना सम्भव नहीं है। इन दोनों में से कोई भी भाव लगातार बना रहे, तो अपूरणीय क्षति हो सकती है। मानव-शरीर इन भावनाओं के हानिकारक प्रभावों को लम्बे काल तक नहीं झेल सकता। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो क्रोध या अपमान के भाव को प्रकट नहीं करते, बल्कि मुस्कुराकर सह लेते हैं। तथापि ये भावनाएँ उनके अचेतन मन को प्रभावित कर जाती है। ऐसे लोग अचेतन मन में ठेस तथा अपमान पहुँचाने वाले के प्रति कटुता का पोषण करते हैं। क्रोध, द्वेष या अपमान की यह मौन स्वीकृति भी उतनी ही हानिकारक है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में कुछ दु:ख, कष्ट, तनाव आदि के अनुभव होते हैं। एक औसत व्यक्ति के पास उनका सामना करने की शक्ति होती है। उन्नत वैज्ञानिक खोजों के इस युग में अपनी समय तथा शक्ति बचाने के हमारे पास अनेक उपाय हैं। इस तीव्र गतिमान युग में सैकड़ों वर्षों पूर्व के लोगों के समान धैर्य और मन:शान्ति की आशा करना कठिन है। पर अपने पूर्वजों के धैर्य का स्मरण हमारे लिए उपयोगी है। इसे स्मरण रखने से हमें अपने जीवन में जल्दबाजी तथा तनाव को संयमित करने में आसानी हो सकती है। मानव शरीर में अपने पर्यावरण के साथ सामंजस्य बिठाने की क्षमता विद्यमान है। उदाहरणार्थ, हवाई अड्डे के समीप रहने वाले लोग प्रारम्भ में हवाई जहाज के उड़ने और उतरने के समय होने वाले शोरगुल से विक्षुब्ध होते हैं, पर कुछ दिनों बाद वे इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि इस शोर के बावजूद वे भलीभाँति सो लेते हैं; फिर भी उनमें कुछ चिड़चिड़ापन रह ही जाता है। शहरों में रहने वालों को बस पकड़ने के लिए प्राय: घण्टों प्रतीक्षा करनी पड़ती है। देर तक कतार में खड़े-खड़े वे प्राय: अधीर हो उठते हैं। सड़क के किनारे चलने वाले पैदल यात्री को देखकर तेज गति के कार-चालक क्रोधित हो जाते हैं। कभी-कभी सहकर्मियों के साथ गरम वाद-विवाद, तर्क-वितर्क और बातचीत से हमारी मानसिक शान्ति छिन जाती है। मानव-शरीर मशीन नहीं है। यह भावनाओं और मनोभावों से पूर्णतया मुक्त नहीं हो सकता। मगर क्रोध तथा घृणा के हानिकर प्रभावों का बोध होने पर मनुष्य संयम का अभ्यास करने लगता है। यदि वह स्वयं पर विजय प्राप्त कर ले, तो संसार के साथ अपना सामंजस्य बैठाना सीख जाता है। तब अपने आघातों को भूल जाना भी एक वरदान हो जाता है।

नरक का द्वार :

एक किसान ने बड़े सबेरे से ही दोपहर की चिलचिलाती धूप में अपने खेत पर काम किया और फिर एक सिंह के समान भूख से पीड़ित होकर उसने अपनी पत्नी से पूछा, 'भोजन तैयार है?' पत्नी ने थोड़े उदासीन भाव से उत्तर दिया, 'आधे घण्टे ठहरो।' किसान ने चिल्लाकर कहा, 'क्या?' और फिर उसने अपने हाथ की गैंती से अपनी पत्नी के सिर पर तेज प्रहार किया। पत्नी-'ओह, मैं तो मर गयी!' - कहते हुए चीत्कार कर उठी और तत्काल काल-कवलित हुई। क्रोध शान्त होने पर किसान को अपने बर्बर कृत्य पर घोर पश्चाताप हुआ।

एक व्यक्ति के अधिकारी ने उन्हें कुछ कड़ी बातें सुना दी थीं और वे केवल इसी कारण नौकरी से त्यागपत्र देकर घर लौट आए। क्रोध के आवेश में उसने कहा, 'मैंने भी अपना त्यागपत्र उसके मुँह पर फेंक दिया। मैं किसी की परवाह नहीं करता।' क्रोध शान्त होने पर वे तरह-तरह से पश्चाताप करने लगे। वे चिन्तित थे कि अब उनकी पत्नी तथा बच्चों का भरण-पोषण कैसे होगा! उन्होंने खेदपूर्वक स्वीकार किया कि क्रोधावेश में उन्होंने एक मूर्खतापूर्ण कार्य कर डाला था।

क्रोध के असंख्य अनर्थकारी परिणाम हैं। विश्व के समस्त महापुरुषों ने मनुष्य को क्रोध से खूब सजग रहने को कहा है। गीता में क्रोध को नरक के द्वारों में से एक बताया गया है। क्रोध का परिणाम है लड़ाई-झगड़े-जैसे को तैसा और हिंसा के बदले हिंसा। महाभारत हमें सावधान करता है कि क्रोधी व्यक्ति का किया हुआ दुष्कर्म उसे विनाश के पथ पर ले जाता है।

क्या आपने कभी क्रोध से उन्मत किसी व्यक्ति का विचित्र आचरण देखा है? यह आपको हास्यास्पद भी लग सकता है। मैं आपको बता दूँ कि मेरे एक परिचित क्रोधावेश में क्या करते थे। चिढ़ाने या गुस्सा दिलाने वाले लोगों को वे कहा करते, 'मैं तुम्हारा खून पी जाऊँगा।' वे अपने क्रोध को विभिन्न रूपों में प्रकट करते हुए कहते-'मैं निश्चित रूप से तुम्हारा सिर तोड़ डालूँगा। मैं तुम्हें कतई नहीं छोड़ूँगा। भले ही मुझे फाँसी या निर्वासन की सजा हो जाए, परन्तु निश्चित रूप से मैं तुम्हारा खून कर दूँगा।' आप यदि उन्हें शान्त करने का प्रयास करें, तो कभी-कभी वे असम्बद्ध तुकबन्दी करते हुए कहते, 'मैं आपकी

(शेष पृष्ठ 33 पर)

यमराज का मेहमान : नचिकेता

– संकलित

बात वैदिक काल की है। गौतम वंश में उत्पन्न हुए एक महात्मा थे बाजश्रवा। बाजश्रवा बहुत दानी व्यक्ति थे। उन्होंने दान करके बहुत यश प्राप्त किया था, इसीलिए उनका नाम बाजश्रवा पड़ गया था। बाज का अर्थ होता है–अन्न और श्रव का अर्थ है, उसके दान से प्राप्त यश। बाजश्रवा के पुत्र हुए महर्षि अरुण और महर्षि अरुण के पुत्र हुए उद्दालक ऋषि। जब उद्दालक वृद्धावस्था में पहुँचे तो उनके मन में यह विचार पैदा हुआ कि क्यों न आगामी जीवन सुधारने के लिये किसी यज्ञ का आयोजन किया जाए। ऐसा विचार कर उन्होंने 'विश्वजित' नामक यज्ञ करने का निश्चय किया। इस यज्ञ में अपना सर्वस्व दान करना पड़ता है। उन दिनों गो धन ही प्रधान था। उद्दालक के घर में गोधन की ही अधिकता थी। उन्होंने यज्ञ के उपरान्त अपना सारा धन यज्ञ के प्रमुख कर्त्ताओं और सदस्यों को दान कर दिया।

उद्दालक ऋषि के पुत्र का नाम था नचिकेता। नियमानुसार दक्षिणा में दान करने के लिये जब गाएँ लाई जा रही थीं तो बालक नचिकेता ने उन्हें देखा। गाएँ बहुत ही दुर्बल और दयनीय दशा में थी। बालक नचिकेता का हृदय बहुत ही कोमल और भावुक था। गायों की दयनीय दशा देखकर वह आकुल हो उठा। वह विचार करने लगा–'पिताश्री ये कैसी गाय दक्षिणा में दे रहे हैं? अब इनमें न तो झुककर जल पीने की शक्ति रही है, न ही इनके मुख में घास चबाने के लिये दांत रह गए हैं। इनके थनों में तनिक-सा दूध भी शेष नहीं बचा और तो और ये गाएँ गर्भधारण के योग भी नहीं रही हैं। भला ऐसी बेकार और मृत्यु के निकट पहुँची गाएँ जिन ब्राह्मणों के घर जाएँगी, उनको दुःख के सिवाय और क्या देंगी? दान तो उसी वस्तु का करना चाहिए, जो अपने को सुख देने वाली हो, प्रिय हो, उपयोगी हो तथा वह जिसको दी जाए, उसे भी सुख और लाभ पहुँचाने वाली हो। दुःख देने वाली बेकार वस्तुओं को दान के नाम पर देना तो दान के बहाने अपनी मुसीबत टालना है, साथ ही यह दान लेने वालों के प्रति एक प्रकार का धोखा ही है। इस प्रकार के दान से पिताश्री को क्या सुख और क्या फल मिलेगा? पिताजी ने तो सर्वस्व दान करने वाला यज्ञ किया है, फिर मेरे नाम पर उपयोगी गाएँ क्यों रख ली हैं? क्या सर्वस्व में वे गाएँ नहीं हैं? और मैं भी तो सर्वस्व में ही हूँ, मुझको तो इन्होंने दान में दिया ही नहीं। यह कैसा सर्वस्व दान है? मैं अपने पिता का प्यारा पुत्र हूँ, इसलिए मैं अपने पिता को इस अन्यायपूर्ण काम से और इसके बुरे परिणाम से बचाने के लिये अपना बलिदान दूंगा। यही मेरा धर्म है।'

ऐसा निश्चय करके नचिकेता ने अपने पिता से कहा–''पिताश्री, मैं भी तो आपका धन हूँ, आप मुझे किसको देंगे?'' नचिकेता के इस प्रश्न की उद्दालक ने उपेक्षा कर दी, उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। पुत्र का कर्तव्य जानने वाले नचिकेता से रहा नहीं गया, उसने दूसरी बार फिर अपने पिता से यही प्रश्न किया।

जब दूसरी बार भी उसके पिता ने कोई उत्तर नहीं दिया तो नचिकेता ने तीसरी बार फिर से यही प्रश्न कर दिया। बार-बार के प्रश्न करने से उद्दालक ऋषि को क्रोध आ गया। उन्होंने आवेश में आकर कहा–''मैं तुझे यम को दूंगा।''

अपने पिता के ये वचन सुनकर नचिकेता मन-ही-मन विचार करने लगा–'आखिर पिताश्री ने इतनी कठोर बात कैसे कह दी? जितना आज तक मैं जान पाया हूँ, उसके अनुसार शिष्यों और पुत्रों की तीन श्रेणियाँ होती हैं–उत्तम, मध्यम एवं अधम। जो गुरु अथवा पिता की इच्छा को समझकर उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा किए बिना ही उनकी रुचि के अनुसार कार्य करने लगते हैं, वे उत्तम हैं। जो आज्ञा पाने पर कार्य करते हैं, वे मध्यम हैं और जो इच्छा जान लेने एवं स्पष्ट आदेश सुन लेने के पश्चात भी उसके अनुसार कार्य नहीं करते, वे अधम है। मैं बहुत से

शिष्यों में तो प्रथम श्रेणी का हूँ और कुछ में मध्यम श्रेणी का, किन्तु अधम श्रेणी का तो किसी भी दशा में नहीं हूँ। आज्ञा मिले और सेवा न करूँ, ऐसा तो मैंने कभी किया ही नहीं, फिर पता नहीं पिताजी ने मेरे लिये ऐसी बात कैसे कह दी। यमराज का भी ऐसा कौन-सा काम अटका होगा, जिसे पिताश्री आज मुझे उन्हें देकर पूरा करना चाहते हैं? हो सकता है पिताजी ने यह बात क्रोध में आकर वैसे ही कह दी हो। जो कुछ भी हो, पिताश्री का वचन तो सत्य करना ही चाहिए।'

इधर तो नचिकेता इस प्रकार से सोच रहा था, उधर उसके पिता एकान्त में बैठे शांतिपूर्वक चिंतन में लीन थे। नचिकेता को पिता का एकान्त में बैठना अच्छा न लगा। उसने विचार किया कि शायद पिताश्री अपने वचनों पर पश्चाताप कर रहे हैं। वह उठा और पिता के पास जाकर उन्हें धैर्य दिलाता हुआ कहने लगा-''पिताश्री! अपने पूर्वजों के आचरण की ओर देखिए और वर्तमान दूसरे श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण को देखिए। उनके चरित्र में न पहले कभी असत्य था और न अब है। जो साधु पुरुष नहीं हैं, वे ही असत्य का आचरण करते हैं, परन्तु उस असत्य से कोई अजर-अमर नहीं हो जाता। मनुष्य तो एक दिन मरता ही है। वह अन्त की भान्ति जराजीर्ण होकर मर जाता है और अन्त की भाँति ही पुन: समय पाकर जन्म ले लेता है। ऐसी दशा में इस नश्वर जीवन के लिये मनुष्य को कभी कर्तव्य का त्याग करके मिथ्या आचरण नहीं करना चाहिए। आप चिंता का त्याग कर दें और अपने वचनों को सत्य करने के लिये मुझे यमराज के पास जाने की आज्ञा दें।''

पुत्र के वचन सुनकर उद्दालक महर्षि को हर्ष भी हुआ और शोक भी। अन्त में नचिकेता की सत्य पालन के प्रति दृढ़ता देखकर उन्होंने उसे यमराज के पास भेज दिया। यमलोक जाकर नचिकेता को पता चला कि यमराज कहीं बाहर गए हुए हैं और तीन दिन बाद लौटेंगे। नचिकेता तीन दिन तक अन्न-जल ग्रहण किए बिना ही उनकी प्रतीक्षा करता रहा। तीन दिन बाद जब यमराज लौटे तो उनकी पत्नी ने उनसे कहा-''हे सूर्यपुत्र! हमारा कोई पुण्य उदय हुआ है जो साधु हृदय अतिथि हम गृहस्थ के घर पधारे हैं। ऋषि पुत्र बालक नचिकेता तीन दिन से बिना अन्न-जल ग्रहण किए आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। आप तुरन्त उसके पैर धोने के लिये जल ले आइए और अतिथि की सेवा कर उसे प्रसन्न तथा संतुष्ट कर दीजिए। अतिथि का घर पर भूखे लेटे रहना हमारे लिये आपत्ति का कारण हो सकता है?''

पत्नी के वचन सुनकर यमराज तुरन्त नचिकेता के पास गए और उसके चरण धोकर उसे प्रणाम करते हुए बोले-''हे बालक! तुम मेरे माननीय अतिथि हो। मेरा कर्तव्य था कि मैं यथायोग्य तुम्हारा पूजन आदि करके तुम्हें संतुष्ट करता, किन्तु मेरे प्रमाद के कारण तुम तीन दिन से बिना कुछ ग्रहण किए भूखे बैठे मेरी प्रतीक्षा करते रहे हो। मुझसे यह बड़ा अपराध हो गया है, मुझे क्षमा कर दो और मेरे कल्याण के लिये उन तीन रात्रियों के लिये अपनी इच्छानुसार मुझसे तीन वर माँग लो।''

यमराज के ऐसा कहने पर नचिकेता ने उनसे कहा-''हे मृत्यु के देवता! तीन वरों में से मैं पहला वर यही माँगता हूँ कि मेरे पिता, जो क्रोध के आवेश में आकर मुझे आपके पास भेजकर अब अशान्त और दुखी हो रहे हैं, मेरे प्रति क्रोधरहित, शान्त चित्त और संतुष्ट हो जाएँ और आपसे आज्ञा लेकर जब मैं घर जाऊँ तब वे मुझे अपने पुत्र नचिकेता के रूप में पहचानकर पहले की तरह की बड़े स्नेह से बातचीत करें।''

यमराज ने प्रसन्न होकर कहा-''जैसा तुम चाहते हो, वैसा ही होगा। तुमको मृत्यु से छूटकर घर लौटा देखकर मेरी प्रेरणा से तुम्हारे पिता बड़े प्रसन्न होंगे। तुमको अपने पुत्र रूप में पहचानकर वे तुमसे वैसा ही प्रेम करेंगे, जैसा पहले करते थे। उनका दु:ख और क्रोध भी शान्त हो जाएगा। तुम्हें पाकर अब वे जीवन-भर सुख की नींद सोएंगे।''

नचिकेता ने दूसरा वरदान पाने के लिये यमराज की ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखा और कहा-''मैं स्वर्ग के सुख और निर्भयता के बारे में जानता हूँ, यह भी जानता हूँ

कि स्वर्ग में न तो किसी को बुढ़ापा सताता है और न ही मृत्युलोक की तरह वहाँ किसी की मृत्यु होती है। भूख-प्यास आदि भी वहाँ नहीं सताती। स्वर्ग में किसी प्रकार का भी शोक नहीं है, लेकिन यह स्वर्ग अग्नि-विज्ञान को जाने बिना प्राप्त नहीं होता। आप अग्नि-विज्ञान के ज्ञाता हैं और मेरी आपमें तथा अग्नि-विज्ञान में श्रद्धा है। दूसरे वरदान में आप मुझे अग्नि-विद्या का उपदेश दीजिए।''

यमराज कहने लगे-''नचिकेता! अग्नि-विद्या बहुत ही गुप्त है। यह विद्वानों की हृदय रूपी गुफा में छिपी रहती है। इसे इसके अधिकारी को ही बताना चाहिए। तुम इसके अधिकारी हो, अत: ध्यान लगाकर समझ लो।''

यह कहकर यमराज ने नचिकेता को अग्नि-विद्या का रहस्य समझाया। यह भी भलीभाँति समझाया कि अग्नि के लिये कुंड निर्माण आदि में किस आकार की, कैसी और कितनी ईंटें चाहिए तथा अग्नि का चुनाव किस प्रकार किया जाना चाहिए।

इसके पश्चात् नचिकेता की बुद्धि परीक्षा के लिये यमराज ने उससे पूछा-''तुमने जो कुछ समझा है, वह मुझे सुनाओ।'' नचिकेता ने सब ज्यों-का-त्यों सुना दिया। यमराज नचिकेता की प्रतिभा और स्मरण शक्ति देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले-''तुम्हारी अद्भुत योग्यता देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है, इससे मैं एक और वर तुम्हारे माँगे बिना ही तुम्हें दे रहा हूँ। वह यह है कि यह अग्नि, जिसका गुप्त रहस्य मैंने तुम्हें बताया है, तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगी और साथ ही यह लो, मैं तुम्हें तुम्हारे देवत्व की सिद्धि के लिये यह अनेक रूपों वाली विविध यज्ञ विज्ञान रूपी रत्नों की माला भी देता हूँ, इसे स्वीकार करो।''

माला को सहर्ष स्वीकार करके नचिकेता ने तीसरा वर माँगा-''भगवन्! कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व रहता है और कुछ लोग कहते हैं कि नहीं रहता, इस बारे में आपका जो अनुभव हो, मुझे बताइए।''

नचिकेता का महत्त्वपूर्ण प्रश्न सुनकर यमराज ने मन-ही-मन उसकी सराहना की, सोचा कि वह ऋषि कुमार बालक होने पर भी बड़ा प्रतिभाशाली है, कैसे गोपनीय विषय को जानना चाहता है, परन्तु आत्मतत्त्व उपयुक्त अधिकारी को ही बताना चाहिए, इसलिए क्यों न पहले इसकी परीक्षा कर ली जाए। ऐसा सोचकर यमराज ने आत्मतत्त्व की कठिनता को बाताकर उसे टालना चाहा और कहा-''नचिकेता! यह आत्मतत्त्व बहुत ही सूक्ष्म विषय है। इसे समझना आसान नहीं है। पहले देवताओं को भी इसके विषय में संदेह हुआ था, उनमें भी इसे लेकर बहुत विचार-विमर्श हुआ था, परन्तु वे भी आत्मतत्त्व को नहीं जान पाए, इसलिए तुम इस वर के बदले कोई दूसरा वर माँग लो।''

नचिकेता आत्मतत्त्व की कठिनता की बात सुनकर तनिक भी नहीं घबराया, उसका उत्साह भी मंद नहीं पड़ा, वह और भी दृढ़ता के साथ बोला-''हे मृत्युदेव! पूर्वकाल के देवता भी इस विषय पर वाद-विवाद कर इसे नहीं जान पाए और आप कहते हैं कि यह विषय आसान नहीं है, बड़ा सूक्ष्म है। दोनों बातों से यह सिद्ध है कि आत्मतत्त्व बड़े ही महत्त्व का विषय है और ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय को समझने वाला आपके समान अनुभवी वक्ता मुझे खोजने पर भी नहीं मिल सकता। आप कहते हैं कि इसके बदले में कोई दूसरा वर माँग लूँ, लेकिन देव, मेरे विचार से तो इसकी तुलना का कोई दूसरा वर है ही नहीं। इसलिए कृपा करके मुझे इसी का उपदेश दीजिए।''

विषय की कठिनता से नचिकेता नहीं घबराया, वह अपने निश्चय पर अडिग रहा। इस परीक्षा में भी वह सफल हो गया।

अब यमराज ने दूसरी परीक्षा के रूप में उसके सामने तरह-तरह के प्रलोभन रखने की बात सोची और कहा-''नचिकेता! तुम बड़े भोले हो, क्या करोगे इस वर को लेकर? इसके बदले मैं तुम्हें अपार सुख की सामग्री दे देता हूँ। सौ-सौ वर्षों तक जीने वाले पुत्र-पौत्र आदि, बड़े परिवार को माँग लो। गौ आदि बहुत से पशु, हाथी, घोड़े, बेशुमार सोना, विशाल भूमण्डल का महान साम्राज्य जो चाहे माँग लो, मैं तुम्हें दूँगा। इन सबको भोगने के लिये

जितने वर्षों तक जीने की इच्छा हो, उतने ही वर्षों तक जीते रहो। यदि तुम अपार धन-संपत्ति, लम्बे जीवन के लिये उपयोगी सुख-सामग्रियाँ अथवा और भी जितने भोग मनुष्य भोग सकता है, उन सबको मिलाकर उस आत्मतत्त्व विषयक वर के समान समझते हो तो इन सबको माँग लो। तुम इस विशाल भूमि के सम्राट बन जाओ। मैं तुम्हें सारे भोगों को इच्छानुसार भोगने वाला बनाए देता हूँ।''

यमराज अपनी चतुराई से जितना भी आत्मतत्त्व के महत्त्व को बढ़ा सकते थे, बढ़ाते जा रहे थे। नचिकेता भी अपने निश्चय पर दृढ़ बना वही वर माँगता रहा। यमराज ने स्वर्ग के अनूठे भोगों का लालच देते हुए कहा-''नचिकेता! जो-जो भोग मृत्युलोक में दुर्लभ हैं, उन सबको तुम अपनी इच्छानुसार माँग लो। ये रथों और तरह-तरह के संगीत से पूर्ण जो स्वर्ग की संदुरियाँ हैं, ऐसी सुंदरियाँ मनुष्यों को कहीं नहीं मिल सकतीं। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इनके लिए ललचाते रहते हैं। मैं तुम्हें ये सब बड़ी आसानी से दे रहा हूँ। तुम इन्हें ले जाओ और अपनी सेवा कराओ, लेकिन नचिकेता, आत्मा के संबंध में प्रश्न मत पूछो।''

नचिकेता प्रतिभा वाला तथा वैराग्य की भावना से पूर्ण हृदय वाला था। वह जानता था कि इस लोक और परलोक के बड़े-से-बड़े भोग-सुख की आत्मज्ञान के सुख के किसी छोटे-से-छोटे अंश के साथ भी तुलना नहीं की जा सकती, इसलिए उसने अपने निश्चय का बड़ी युक्ति से समर्थन करते हुए कहा-''हे सबका अंत करने वाले यमराज! आपने जिन भोग करने योग्य वस्तुओं की महिमा के पुल बांधे हैं, वे सभी शीघ्र नष्ट हो जाने वाली हैं, कल तक ये वस्तुएँ रहेंगी भी या नहीं, इसमें भी संदेह है। इनसे मिलने वाला सुख वास्तव में सुख नहीं है, वह तो दुःख ही है। भोगी जाने वाली ये वस्तुएँ कोई लाभ तो देती ही नहीं, बल्कि मनुष्य की इंद्रियों के तेज और धर्म को भी हर लेती हैं। आपने जो दीर्घ जीवन देना चाहा है, वह भी अनंतकाल की तुलना में बहुत ही कम है। जब ब्रह्म आदि देवताओं का जीवन भी थोड़े समय का है, एक दिन उन्हें मरना पड़ता है, तब औरों की तो बात ही क्या है। इसलिए मैं यह सब नहीं चाहता। ये अपने हाथी-घोड़े, रथ और सुंदरियाँ और इनके नाच-गान आप अपने पास ही रखें।''

नचिकेता ने आगे कहा-''हे यमराज! आप जानते ही हैं, धन से मनुष्य की कभी तृप्ति नहीं होती। आग में घी डालने से जैसे आग जोरों से भड़कती है, उसी प्रकार धन तथा भोगों की प्राप्ति से भोग की इच्छा और भी प्रबल होती है। तृप्ति का वहाँ क्या काम? वहाँ तो दिन-रात अधूरेपन और अभाव की आग में ही जलना पड़ता है। ऐसे दुःखमय धन और भोगों को कोई भी विद्वान पुरुष नहीं माँग सकता। मुझे अपने जीवन-निर्वाह के लिये जितने धन की आवश्यकता होगी, उतना तो आपके दर्शन से ही मिल जाएगा। रही बात दीर्घ जीवन की, तो जब तक मृत्यु आपके हाथ में है, तब तक मुझे मरने का जरा भी भय नहीं है। यह सब जानकर मुझे दूसरा कोई वर माँगने वाली बात उचित नहीं मालूम होती। मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे आत्मतत्त्व के ज्ञान का ही वर दें। हे यमराज! आप ही बताइए, भला आप जैसे अजर-अमर महात्मा देवता स्वरूप का दुर्लभ संग पाकर मृत्युलोक का ऐसा कौन बुद्धिमान मनुष्य होगा, जो स्त्रियों के सौंदर्य, क्रीड़ा और आमोद-प्रमोद में आसक्त होकर उनकी ओर देखेगा और इस लोक में लम्बे समय तक जीते रहने में सुख मानेगा? हे महात्मन्! मुझे तो आप अपना अनुभव सिद्ध आत्मतत्त्व ही समझाएँ। वह चाहे जितना ही गूढ़ हो, पर आपके इस शिष्य को तो उसके सिवाय और कुछ चाहिए ही नहीं।''

इस प्रकार परीक्षा करके जब यमराज ने समझ लिया कि नचिकेता पक्के इरादे वाला, परम वैराग्यवान और निर्भय है, इसलिए ब्रह्मविद्या का अधिकारी है, तब ब्रह्मविद्या का आरम्भ करने से पहले उसका महत्त्व बताते हुए वे बोले-''नचिकेता! मनुष्य-शरीर दूसरी योनियों की भाँति केवल कर्मो का फल भोगने के लिए नहीं मिला है। इस शरीर को पाकर मनुष्य भविष्य में सुख देने वाले साधन की साधना भी कर सकता है। सुख के दो साधन हैं-श्रेय और प्रेय। सदा के लिए सब प्रकार के दुखों से भली-भाँति छूटकर नित्य प्रति आनंदरूप परब्रह्म पुरुषोत्तम

को पाने का उपाय ही 'श्रेय' कहलाता है। स्त्री, पुरुष, धन, मकान, सम्मान, यश आदि इस लोक का और स्वर्गलोक की जितनी भी भोग-सामग्रियाँ हैं, उनकी प्राप्ति का उपाय 'प्रेय' कहलाता है। सच्चा सुख चाहने वाले प्रेय अविद्यारूप। जिसकी भोगों में आसक्ति है, वह प्रेय (अविद्या) को अपनाता है, वह कल्याण-साधन में आगे नहीं बढ़ सकता और जो कल्याण के रास्ते पर चलना चाहता है, वह विद्या रूप श्रेय की साधना करता है। वह भोगों की ओर दृष्टि ही नहीं डालता। इस प्रकार के भोगों को दु:ख रूप मानकर उनको पूरी तरह छोड़ देता है।

यमराज ने कहा-''हे नचिकेता! तुम निश्चय ही विद्या के अभिलाषी हो। तुम्हारी परीक्षा करके मैंने अच्छी तरह देख लिया कि तुम बड़े बुद्धिमान, विवेकी एवं वैराग्यवान हो। जो लोग अपने को बहुत चतुर, विवेकी और तर्क देने वाले समझते हैं, वे भी चमक-दमक वाली संपत्ति के मोह जाल में फंस जाया करते हैं, किन्तु तुमने उसे भी स्वीकार नहीं किया। तुम सचमुच परमात्म-तत्त्व को जानने के अधिकारी हो।''

इसके पश्चात यमराज ने नचिकेता को आत्म तथा परमात्म-तत्त्व समझाया। उसका सारांश इस प्रकार है-

''कर्मों के फलस्वरूप इस लोक तथा परलोक के भोग समूह की जो निधि मिलती है, वह चाहे कितनी ही महान क्यों न हो, एक दिन उसका नाश निश्चित है, इसलिए वह अनित्य है। इसके विपरीत परमात्मा नित्य है। अनित्य से नित्य की प्राप्ति नहीं हो सकती, अत: सब प्रकार की कामना और आसक्ति को छोड़कर कर्तव्य बुद्धि से ही परमात्मा को जाना जा सकता है। परमात्मा नाम रहित होते हुए भी अनेक नामों से पुकारा जाता है। इन नामों में सबसे श्रेष्ठ नाम **'ओ३म्'** है। ब्रह्म कहो चाहे परब्रह्म कहो, सब **'ओ३म्'** रूप हैं।

आत्मतत्त्व को पहचानकर **'ओ३म्'** के माध्यम से परमात्म-तत्त्व तक पहुँचा जा सकता है। आत्मतत्त्व अविनाशी है। न वह मरता है और न किसी को मारता है। यह आत्मतत्त्व ही परमात्व-तत्त्व को प्राप्त होता है। परमेश्वर न तो उसको मिलता है, जो शास्त्रों को पढ़-पढ़कर लच्छेदार भाषा में परमात्म-तत्त्व का भली-भाँति वर्णन करते हैं, न उन तर्कशील बुद्धिवादियों को मिलता है, जो बुद्धि का घमण्ड करते हुए तर्क द्वारा विवेचन करके उसे समझने की चेष्टा करते हैं, न वह उनको ही मिलता है, जो परमात्मा के बारे में बहुत कुछ सुनते रहते हैं।

वह (परमात्मा) तो उसी को प्राप्त होता है, जिसको वह स्वयं स्वीकार कर लेता है और वह उसी को स्वीकार करता है, जो उसके बिना रह नहीं सकता और उसको पाने की उत्कट इच्छा रखता है तथा जो उसकी कृपा पर निर्भर करता है।

स्मरण रहे, जो मनुष्य बुरे आचरणों से घृणा करके उनका त्याग नहीं कर देता, जिसका मन परमात्मा को छोड़कर दिन-रात सांसारिक भोगों में भटकता रहता है, परमात्मा पर विश्वास न होने के कारण जो सदा अशान्त रहता है, जिसने मन, बुद्धि और इंद्रियों को वश में नहीं कर रखा है, वह व्यक्ति परमात्म-तत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता।

परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति के लिए एकाग्रता, श्रद्धा और प्रीति की आवश्यकता होती है। परमात्मा लोक-परलोक अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। वह अपनी अचिंत्य शक्ति से नाना रूपों में प्रकट होता है। यह सारा जगत बाहर-भीतर उस एक परमात्मा से ही व्याप्त होने के कारण उसी का स्वरूप है। जगत में परमात्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है। जो व्यक्ति भिन्नता की झलक देखता है, वही बार-बार जन्मता-मरता रहता है।''

यमराज के मुख से ऐसी सारगर्भित बातें सुनकर नचिकेता की जिज्ञासा शान्त हो गई। आत्मतत्त्व का रहस्य उसके आगे प्रकट हो गया। हृदय की गांठ खुल गई, संशय दूर हो गया। उसे वह सब कुछ मिल गया जिसके लिए वह तड़प रहा था। उसने समझ लिया कि आत्मा न तो कभी जन्म लेती है और न कभी मरती है। वह सनातन है, नित्य है, मृत्यु ने नचिकेता को ब्रह्मयुक्त बना दिया, मलविहीन कर दिया।

(कठोपनिषद से)

तप का सार क्या है?

– महात्मा चैतन्य मुनि

एक बार समस्त देवता असुरों से हारकर परमात्मा की शरण में पहुँचे। परमात्मा बोले तुम इसलिए असुरों से हार गये हो, क्योंकि तुम लोगों ने वह कर्म ही छोड़ दिया है, जिससे तुम्हारे भीतर दिव्यता का सृजन हो सकता है। उन्होंने आगे कहा कि तुम लोगों ने क्रियायोग को त्याग दिया है, इसलिए तुम असुरों से हार गये हो।

देवत्व और असुरत्व की भावनाएँ निरंतर हमारे भीतर क्रमशः चलती रहती हैं। यदि व्यक्ति जागरुक है तो देवत्व की भावनाओं को प्रबल बना सकता है, मगर यदि वह जागरुक नहीं है तो असुरत्व की भावनाओं से उसकी हार हो जाना निश्चित है। आज हम देखते हैं कि असुरत्व की भावना प्रत्येक क्षेत्र में प्रबल होती चली जा रही है और देवत्व का ह्रास होता चला जा रहा है। देवत्व के गुण ही नहीं रहे तो हारना स्वाभाविक है। विजय के लिए हमें क्रियायोग को अपनाना होगा। यह क्रियायोग वास्तव में है क्या? योगदर्शन के रचयिता महर्षि पतंजलि जी का कथन है–''**तप स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।।**'' अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान क्रियायोग है। इस क्रियायोग में सबसे पहले तप आया है। तप किसी प्रकार का दिखावा या आडम्बर मात्र नहीं है, बल्कि तप को व्यवहारिकता के साथ जोड़ने की जरूरत है। तप क्या है, इस सम्बन्ध में व्यास भाष्य में कहा गया है–''**भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, स्थान–आसन और काष्ठमौन–आकार मौनादि द्वन्द्वों को सहना और कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतों का शक्ति के अनुसार अनुष्ठान करना तप कहलाता है।**'' परन्तु व्यासमुनि जी ने इन तपों के विषय में सावधान भी किया है कि इनका अनुष्ठान अपनी शक्ति के अनुसार करना चाहिए, अन्यथा शक्ति का अतिक्रमण करने से धातुओं में वैषम्य हो जाता है और अनेक रोगों से शरीर दूषित हो जाता है। इसलिए हमारा कहना है कि हम तप के भाव को समझकर उसका कार्यन्वयन इस प्रकार करें ताकि उसका आम जीवन में उपयोग हो सके।

चाणक्य जी का कथन है–''**तपः सार इन्द्रिय निग्रहः।**'' अर्थात् अपनी ज्ञानेन्द्रियों और कार्मेन्द्रियों को संयमित करने का नाम ही तप है। चाणक्य जी के कथन में बहुत ही व्यवहारिक सत्य छिपा हुआ है। वास्तव में सुख और दुःख का आधार हमारी इन्द्रियों पर ही निर्भर करता है, इसलिए अपनी इन्द्रियों को पापाचार की ओर न जाने देना ही तप है। काम, क्रोध, लोभ, अहंकार और मोह आदि ही दुःख का कारण है तथा ये समस्त एषणाएँ इन्द्रियों का सहारा लेकर ही प्रश्रय पाती हैं, इसलिए अपनी इन्द्रियों को सही दिशा की ओर मोड़ना ही तप है। महाभारत में यक्ष और युधिष्ठिर का संवाद आया है। यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा–''**तपः किम् लक्षणम्?**'' धर्मराज ने इसका उत्तर दिया–''**तपः स्वकर्म वर्त्तित्वम्।**'' यह प्रश्न और उत्तर अत्यधिक महत्वपूर्ण तथा जीवन से जुड़ा हुआ है। मेरी दृष्टि में तप की इससे उत्तम व्याख्या हो ही नहीं सकती है। यक्ष का प्रश्न है कि तप का लक्षण क्या है और धर्मराज जी का उत्तर है कि अपने कर्म को ठीक ढंग से करना ही सबसे अच्छा तप है। इस प्रकार तप का सार वास्तव में यही है कि हम जहाँ भी हैं, वहाँ पर पूरे मन से अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कठोर परिश्रम करें। बस फिर जीवन की प्रत्येक न्यामत हमारे कदम चूमने लगेंगी।

खुद चूम लेती है आकर मंजिल,
इन्सान ही यदि हिम्मत न हारे।

तपस्या से बढकर सच्चे कार्य हैं।

– वशिष्ठ

विचार–सरिता

(द्विषष्टिः लहरी)

– विचारक

यहाँ हर कोई जीना चाहता है। मृत्युलोक में रहते हुए भी यहाँ मरना कोई नहीं चाहता। मृत्यु नाम से हम सभी घबराए हुए हैं। यह नाम ही अपने आप में एक मर मिटने का भाव लिए हुए है। मरना कोई चाहता नहीं फिर भी मौत ठीक समय पर और निश्चित स्थान पर आ ही जाती है। मौत कोई पदार्थ नहीं जो कहीं से दृश्य के रूप में चलकर आती हो। मौत तो एक अदृश्य प्रवाह है जो सतत् चल रहा है। मौत को हम काल अर्थात् समय की संज्ञा दें तो शायद ठीक समझ में आएगा कि मृत्यु क्या है?

इस जगत में हम सभी देह प्रपञ्च की दृष्टि से काल के अधीन हैं। यहाँ तो सब कुछ काल का ही बोलबाला है। इस जगत में काल के अधीन दृश्य की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय सतत् चल रहा है। यहाँ जो कुछ दृश्यमान है वह स्थिर है ही नहीं, सब गतिमान है। यहाँ तो काल का ताण्डव चल रहा है। उत्पत्ति, स्थिति तथा लय इतना तीव्र गतिमान है कि हमें केवल स्थिति का ही भान होता है। इसीलिए तो इस जगत को हम असत्य होते हुए भी सत्य ही मान बैठे हैं।

जैसे बड़वाग्नि उमड़े हुए समुद्र को समुद्र में रहते हुए उसी के जल को सोखती रहती है, उसी प्रकार यह सर्वभक्षी काल भी उत्पन्न हुए जगत को अपना ग्रास बना लेता है। भयंकर कालरूपी महेश्वर इस संपूर्ण दृश्य-प्रपञ्च को निगल जाने के लिये सदा उद्यत रहते हैं। क्योंकि यहाँ की समस्त सामग्री उस महाकाल के लिये सामान्य रूप से ग्रास बना लेने योग्य है। युग, वर्ष और कल्प के रूप में काल ही प्रकट है। इसका वास्तविक रूप कोई देख ही नहीं सकता। संसार में जो श्रेष्ठ व रमणीय कहे जाने वाले सुमेरू पर्वतादि को भी काल ने उसी तरह निगल लिया है, जैसे गरुड़ सर्पो को निगल जाता है। जिनकी एक ही हुंकार से दिग्गज कंपायमान होते थे, जिनकी एक ही धमक से पृथ्वी डगमगायवान हो जाती थी, जिनके बल से देवता भी भयभीत रहते थे, उन सभी को समक्ष आने पर काल का ग्रास बनना पड़ा। इस जगत में अब तक ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे यह काल उदरस्थ न कर ले। अब तक असंख्य लोग इस महाकाल के गाल में चबाये जा चुके हैं तो भी यह महाखाऊ काल तृप्त नहीं होता।

मनोराज्य की भाँति समय का साम्राज्य भी विशाल है। समस्त सृष्टि में उसी की हुकूमत है। एक ही निमेष में किसी वस्तु को उत्पन्न कर देता है और अगले ही पल में उसका विनाश भी कर डालता है। यह काल बड़ा क्रूर है गर्भ से लेकर वृद्ध तक को नहीं छोड़ता, जैसे संहार ही इसकी नियति है। पुण्य और पाप के फलभोग के अनुसार सुन्दर और कुरूप रूप धारण करनेवाले समस्त शरीरों को काल ही उत्पन्न करता, काल ही उनकी रक्षा करता है और काल ही सहसा उनका संहार कर देता है। जिस प्रकार सर्पणी अपने अंडों के बाहर घेरा बनाकर बैठ जाती है और उसके घेरे में पनपने वाले अपने ही बच्चों का आहार करने पर भी तृप्त नहीं होती। ठीक इसी प्रकार काल के दायरे में हम सभी एक दिन काल के उदर में समा जाएँगे।

इस जगत् मण्डल में जो कुछ भी दिखायी देता है वह काल की नृत्यशाला है। इसमें कालरूपी नृतक का नृत्य अविरल चल रहा है। उस सर्पणी की तरह यह क्रूर काल तरुण शरीर को बुढ़ापे में पहुँचाकर समस्त प्राणी समुदाय को निरंतर अपना ग्रास बनाता रहता है। काल निर्दयों का राजा है वह किसी भी आर्त प्राणी के ऊपर दया नहीं करता। ऐसे निर्दयी काल के इस जगत में कोई भी बुद्धिमान पुरुष देहादि, प्रपञ्च में क्योंकर आसक्ति कर सकता है। कौन जिज्ञासु ऐसा होगा जो इस अनित्य संसार में नित्यता की भ्रान्ति करके अपने आपको धोखा देगा। जब शरीरों की अन्तिम परिणिति विनाश ही है तो इस मरणधर्मा शरीर से साधक को अन्तिम परिणित से पूर्व ही आत्मा और अनात्मा का सत्य बोध कर लेना चाहिए।

शरीर जड़ है और आत्मा चेतन है, इसलिए विपरीत धर्मों में एकता कैसी। शरीर काल के अधीन है और आत्मा कालातीत है। ऐसी समझ के साथ शरीर और शरीरी का तादात्म्य-सम्बन्ध भी मानने मात्र का है। वास्तव में जड़ और चेतन का सम्बन्ध सम्भव भी नहीं है। अज्ञानकाल में हम अपने इस देह को ही अपना स्वरूप समझ लेते हैं इसलिए मरणधर्मा इस शरीर के मरने के साथ हम अपनी मृत्यु मान लेते हैं। जबकि स्वरूप की मृत्यु तीन ही काल में सम्भव ही नहीं है। अपने आपके अस्तित्व में जग जाने की जरूरत है फिर हमें कभी भी काल डरा नहीं पाएगा।

ओम् शान्ति! ओम् शान्ति!! ओम् शान्ति!!!

मन की चिंता

– रश्मि रामदेरिया

लूवां रा लपका, आँधी रा झपका, उनाळा कितराई बीत्या,
आँसूड़ा टपका, हिवड़ै ने बरसा, छोटा थकाँ ने सींच्या।
बै भूल गया उपकार–थारी अब पारख होसी रे।।
मन हार हियो मत हार, थारी अब पारख होसी रे।
रख आँख्याँ में थोड़ो खार, थारी अब पारख होसी रे।।

शरीर, इन्द्रियाँ और मन से काम होता है, पर मन से शरीर की अपेक्षा सैकड़ों गुणा अधिक काम होता है– चाहे बुरा हो या भला।

''मानस पुन्य होहिं नहिं पापा (रामचरितमानस)''

मनसा पाप कम होता है, जैसे हिंसा मन से करनी चाही, पर क्रिया से नहीं की तो पाप कम होता है। बाधा के विषय में तो मन बहुत ही अटकाव पहुँचाता है। विषयासक्ति से ही ईश्वरप्राप्ति में बाधा होती है। मन की बुरी क्रिया उन्नति में सैकड़ों गुणा बाधक है। इस कलयुग में तो प्रभु स्मरण से बढ़कर कुछ नहीं है। जितना प्रभु का नाम जप, स्मरण करते रहेंगे अपने प्रभु को, उतने हमारे कर्म कटते जाएँगे और प्रभु के चरणों में हमारी भक्ति दिन दौगुना रात चौगुना बढ़ती जाएगी। सभी बाधाएँ समस्याओं का समाधान स्वत: ही होता जाएगा। मन की सभी चिंता हमेशा के लिए दूर हो जाएगी मन एकदम शान्त रहने लगेगा। जब हम अपने मन को शान्त कर लेते हैं, सबसे बड़ी विजय यही है। फिर हमारे अन्दर नये शुभ विचारों का आगमन होता है, एक उत्साह उम्मीद की किरण नजर आने लगती है, वह और कुछ नहीं प्रभु की हम पर कृपा होती है। अहं को बीच में कभी ना आने दें, जो भी हमारे द्वारा कार्य होते हैं सब ईश्वर करवाता है, सारी चिंताएँ उसे सौंप कर हम सिर्फ प्रभु स्मरण करते हुए हर कार्य करते रहें, ना भविष्य की चिन्ता करें, ना ही भूत का कुछ याद करें, सिर्फ वर्तमान में अपने कर्म करते रहें; ना फल की इच्छा करें, ना ही अपने मन को दु:खी होने दें।

''मन मत कर चिन्ता एक रती, थारे सिर पर साहब सीतापति;
दासी अरज करे सुनो श्यामपति, कृपा करने मने भुलाज्यो मति।''

मात्र हेरणो छोड़ दो, अतरो ही उपदेश।
साधन सूत्र यही कहयो, रह्यो न कुछ अवशेष।।

– महात्मा श्री भूरी बाई

जितना हो सके अपने मन को प्रसन्नचित रखें तभी प्रभु की पूर्ण कृपा होती है। प्रेम से बढ़कर कुछ नहीं और जहाँ प्रेमपूर्वक कार्य होते हैं, प्रेमपूर्वक प्रभु का स्मरण, उनकी सेवा होती है–प्रभु को सबसे प्रिय वही भक्त होते हैं। दुनिया की सबसे बड़ी शक्ति प्रभु की कृपा और आशीर्वाद आपके साथ है तो हमें किसी बात की कभी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। हम व्यर्थ परेशान होते हैं, हमारे मन को दु:खी करते हैं, विचलित करते हैं जबकि हमारे हाथ में कुछ नहीं है। हमारे हाथ है सिर्फ अच्छे कर्म और रात–दिन प्रभु स्मरण। सोते समय माला फेरकर सोयें तो वृत्ति बहुत अच्छी हो जाती है और स्वप्न भी अच्छे आते हैं, मन शान्त रहता है। जब हम अपना अहं बीच में ले आते हैं तो प्रभु अपना हाथ पीछे कर लेते हैं, वहीं अगर हम अपनी सभी चिंताएँ प्रभु पर छोड़ देते हैं, उनको सौंप देते हैं तो उस जिम्मेदारी को प्रभु बहुत अच्छे से निभाते हैं; असम्भव को भी सम्भव कर देते हैं इतनी शक्ति है उनमें। गलती हमसे होती है बिना वजह हम चिंता करके अपने मन को अशान्त करते हैं। जप का एक ही प्रकार का अभ्यास नित्य करें। स्वप्न में प्रभु के दर्शन होना प्रभु के ध्यान में और प्रेम में सहायक है। मन, बुद्धि का सुधार करें।

According to the Bhagavad Gita-the undisciplined mind acts as our enemy, where as a trained mind acts as our friend so we need to have a clear idea of the mechanism of our mind.

अच्छे–अच्छे भावों की स्थिरता, पवित्रता हो ऐसी चेष्टा करें। मन में से तामसिक एवं संसार के संकल्प को कम करें। वैराग्य, उपरामता आदि भावों की मन में वृद्धि करें। ज्ञानमार्ग में दृष्टा, साक्षी के भाव से बहुत लाभ होता है। अलग होकर शरीर को देखें। मन के संकल्प, विकल्प

को सुधारें। राजस, तामस वृत्तियों को सुधार कर सात्विक वृत्ति बनावें। बार-बार आनन्द की भावना करने से प्रसन्नता हो जाती है। लौकिक हानियों को याद करने से चित में दु:ख चिन्ता हो जाती है। बुरी चीजों के त्याग में द्वेषवृत्ति भी साधक के लिये लाभप्रद है।

''सुत दारा अरु लक्ष्मी पापी के भी होय।
संत मिलन अरु हरि भगति तुलसी दुर्लभ दोय।।''

सत्संग और ईश्वर की भक्ति ये दोनों चीजें दुर्लभ हैं। इन दो के होने से निरन्तर भजन हो सकता है। आगे से टालना नहीं चाहिये हमें रात-दिन प्रभु का स्मरण करते रहना चाहिये।

''तुझको क्या है खबर जिन्दगी तेरी कितने पल की है। यम के दूत घेर जब लेंगे तब क्या कर्म कमायेगा; रे मन मूरख कब तक जग में जीवन व्यर्थ बितायेगा तू जीवन व्यर्थ बितायेगा। राम-नाम नहीं गायेगा तो अन्त समय पछतायेगा...।''

आजकल करते-करते पारस चला जायेगा, लोहा पड़ा रहेगा।

''काल भजन्ता आज भज आज भजन्ता अब
पल में परलय होयगी बहुरि भजैगा कब।।''

अत: सही समय रहते अपने मन को सही दिशा की ओर अग्रसर करें ताकि हमारे मन की सभी चिंताएँ समाप्त हो जायें।

पृष्ठ 24 का शेष

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

बदमिजाजी को पाँव से कुचलता हूँ।' इन क्रोधियों में ऐसे लोग भी होते हैं, जो अपने शत्रुओं को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं, सर्वनाश कर डालते हैं, सब कुछ मटियामेट कर देते हैं। किसी का गला मरोड़ देते हैं। वे कटु तथा अश्लील शब्दों में ताने मारते हैं। ऐसे चिड़चिड़े लोगों के व्यवहार की कभी हँसी उड़ाने का भी प्रयास मत कीजिए। वे आप पर ही पिल पड़ेंगे। जब कोई अपने क्रोध को सीधे अभिव्यक्त नहीं कर पाता, तो प्राय: वह दूसरों से भिड़ जाता है। क्रोधित हो जाना एक खतरनाक आदत है। प्लूटार्क ने कहा था, 'क्रोध तुम्हारे मन में प्रविष्ट होने के पूर्व ही तुम्हारे विवेक को छीन लेता है और उसके लौटने के सारे दरवाजे बन्द कर देता है।' एक संस्कृत सुभाषित में कहा गया है, 'श्रेष्ठ लोगों में क्रोध क्षण भर ही रहता है और उससे निम्नतर लोगों में दो घण्टे तक रहता है, और भी निम्नतम लोगों में पूरे दिन रहता है, परन्तु दुष्टों में यह जीवन भर बना रहता है।' अत: क्रोध को हमें लम्बे समय तक बने रहने की अनुमति नहीं देनी चाहिए।

प्रसिद्ध अंग्रेज समालोचक डॉ. सैमुअल जॉनसन के जीवनीकार का एक बार उनके किसी मित्र ने अपमान कर दिया। इस घटना से क्षुब्ध बॉसवेल ने डॉ. जॉनसन से शिकायत की। डॉ. जॉनसन ने उत्तर दिया, 'जरा सोचो, एक वर्ष बाद यह अपमान कितना महत्त्वहीन हो जाएगा।' बॉसवेल ने इस सलाह पर विचार किया और इसका गूढ़ निहितार्थ समझ गए। परवर्ती काल में उन्होंने लिखा, 'मैंने इस सलाह पर अनेकों बार अमल किया और हर बार इससे मेरी स्नायुओं को राहत मिली।'

अपनी परिव्रज्या के दिनों में स्वामी विवेकानन्द एक बार दो अंग्रेजों के साथ रेलगाड़ी के एक ही डिब्बे में यात्रा कर रहे थे। उनकी वेशभूषा को देखकर दोनों अंग्रेजों ने उन्हें कोई भिखारी समझ लिया और अंग्रेजी भाषा में आपस में उनकी हँसी उड़ाने लगे। अगला स्टेशन आने पर स्वामीजी को स्टेशन-मास्टर के साथ विशुद्ध अंग्रेजी में बातें करते देखकर दोनों अंग्रेज हैरान तथा लज्जित हुए। उन दोनों ने स्वामीजी से पूछा कि उनके कटाक्षपूर्ण उपहासों का उन्होंने विरोध क्यों नहीं किया। स्वामीजी ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, 'मित्रो, मैं अपने जीवन में पहली बार मूर्खों से नहीं मिल रहा हूँ।'

इस घटना में ध्यान देने की बात यह है कि उन मूर्खों द्वारा भड़काए जाने पर भी स्वामीजी शान्त ही रहे।

(क्रमश:)

अपनी बात

बच्चा पैदा होता है, एक चमत्कार घटता है। कुछ क्षणों तक माँ-बाप, चिकित्सक, दाई एक ही आकांक्षा से भरे रहते हैं-बच्चा किसी तरह से रो दे, क्योंकि रो दे तो श्वास चल जाए। माँ के पेट से पैदा होने के बाद वे दो-चार-दस क्षण सर्वाधिक मूल्यवान क्षण हैं। उन्हीं पर निर्भर है-जीवन आएगा कि नहीं, बच्चा जागेगा कि नहीं, बच्चा जीएगा कि नहीं। किसी के बस में, हाथ में यह बात नहीं है कि बच्चे को समझा सके कि श्वास ले पागल, रुक मत! कोई उपाय नहीं है। लेगा तो लेगा, नहीं लेगा तो नहीं लेगा। और बच्चे ने पहले कभी श्वास ली नहीं है। माँ के पेट में माँ ही बच्चे के लिए श्वास लेने का काम कर रही थी। माँ के पेट से बच्चा अलग हो गया है। उसकी नाल भी काट दी गई है। अब बच्चा बिल्कुल स्वतंत्र है। अब उसे ही श्वास लेना है और किसी पाठशाला में उसे सिखाया नहीं गया, वह कैसे श्वास ले? लेकिन श्वास आ जाती है। कौन डाल देता है इस श्वास को?

हर बच्चे में कोई श्वास डालता है। पता नहीं कौन! जीवन की कोई महत् ऊर्जा छुपे-छुपे बच्चे में श्वास डाल देती है। यह चमत्कार रोज घटता है, फिर भी हम अंधे हैं। हम श्वास को चलते देख लेते हैं पर जिसने श्वास फूंकी उसकी तलाश नहीं करते।

आकाश की तरफ आँख उठाकर शून्य से जो वार्तालाप करे, वह प्रार्थना है। और आँख बन्द करके भीतर के शून्य में जो ठहर जाए वह ध्यान है। मगर दोनों की शुरुआत श्रद्धा में है। श्रद्धा का अर्थ होता है-जो दिखाई नहीं पड़ता, जिसके होने का कोई कारण नहीं, कोई प्रमाण नहीं, लेकिन होना चाहिए, ऐसी अपूर्व भावदशा।

हम देखते हैं, रोज लोग मरते हैं। रोज हम लाश उठती देखते हैं, अर्थी निकलते देखते हैं। लेकिन फिर भी हमें कभी यह ख्याल नहीं आता कि मैं मरूँगा। क्या मामला है? इतने लोग मरते हैं, लेकिन हमें यह ख्याल नहीं आता कि मैं भी मरूँगा। जरूर कुछ राज है। इतने लोगों की मृत्यु भी यह सिद्ध नहीं कर पाती हमें कि मैं भी मरणधर्मा हूँ। हमारे भीतर कहीं कोई श्रद्धा है अमरत्व की।

प्रत्येक व्यक्ति अपने अंतरतम में जानता ही है कि जीवन अमर है। इसका कोई अंत नहीं। हम खोजते नहीं, तलाश नहीं करते, अन्यथा यही श्रद्धा हमारे जीवन का साक्षात्कार बन जाए। इन श्वासों के भीतर श्वास लेने वाला छिपा है। इस मरणधर्मा देह में अमृत विराजमान है। यह जो मृत्यु का पथ है-जन्म से लेकर अर्थी तक, झूले से लेकर श्मशान तक-यह जो जीवन का पथ है, यह तो मृत्यु का पथ है। मगर इस पर चलने वाला जो यात्री है, वह अमृत है। देहें गिरती हैं, उठती हैं, यात्री चलता रहता है। वस्त्र बदलते हैं, जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, बदल लिए जाते हैं, मगर जो भीतर छिपा है, चलता जाता है।

जागने के लिये किसी जागने वाले का साथ चाहिए। संगीत सीखते हैं तो किसी संगीतज्ञ से ही सीख सकते हैं-जिसके हाथ सध गए हों, उसके हाथों को देखकर हमारे हाथ भी सधने लगते हैं। श्रद्धा भी सीखनी हो तो सत्संग में ही सीखनी होगी, जहाँ श्रद्धा को कोई उपलब्ध हो गया हो; जहाँ फूल खिल गये हों। चाहे फूल हमें न भी दिखाई पड़े, पर सान्निध्य में सुवास तो हमें भी पता चलेगी। स्पष्ट-स्पष्ट कुछ पकड़ में न भी आए, तो भी अस्पष्ट अदृश्य की पदचाप हमें सुनाई पड़ने लगेगी। सत्संग में जो दिया जाए, दिल खोलकर लें तो सत्संग जम जाएगा। प्रीति उमगेगी। रस बहेगा। रात सुबह में बदल जाएगी। श्री क्षत्रिय युवक संघ के सत्संग में जीवन-धारा ही रसमय बन जाएगी। बस दिल खोलकर लेना सीख लें।

श्री Hari Infra Projects Pvt. Ltd.

SPECIALIST IN ALL TYPES OF WATER SUPPLY PROJECTS ON TURNKEY BASIS

OPTIMUM UTILIZATION OF EACH DROP

Shree Hari Infraprojects Private Limited

26, Shree Hari Mansion, Gopalbari, Hathroi Block, Jaipur- 302001 (Rajasthan)

Ph.: +91-141-2945653 ♦ E-mail : info@shippl.com ♦ Website : www.shippl.com

Registered "AA" Class Contractor, Government of Rajasthan

श्री क्षत्रिय युवक संघ के
हीरक जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में
सभी समाज बन्धुओं को
हार्दिक बधाई।

IAS / RAS
तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड
Spring Board
Springboard Academy, Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda, Gopalpura, Bypass Jaipur
Website : www.springboardindia.org

जून, सन् 2021
वर्ष : 58, अंक : 06

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति
ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह